मूल्यः ₹30

नवंबर–दिसंबर 2022

आई. एस. ओ. 9001: 2015 संगठन

वैज्ञानिक बागवानी की लोकप्रिय पत्रिका

फल फूल

भाकृअनुप
ICAR

आज़ादी का अमृत महोत्सव

सेब में क्लोनल रूटस्टॉक्स तकनीक से बदला जीवन

हिमाचल प्रदेश के चंबा जिला, सलोनी ग्राम के श्री पवन कुमार गौतम ने भाकृअनुप-केंद्रीय शीतोष्ण बागवानी संस्थान, श्रीनगर, जम्मू और कश्मीर द्वारा विकसित तकनीक क्लोनल रूट स्टॉक्स को अपनाकर इस क्षेत्र में सफल प्रगतिशील नर्सरी उद्यमी के रूप में अपनी एक नई पहचान बनाई है। श्री पवन ने वर्ष 2015 में 105 वर्ग मीटर के ग्रीनहाउस क्षेत्र में छोटे पैमाने पर क्लोनल रूटस्टॉक्स को उगाना शुरू किया। उस समय वह केवल प्रति वर्ष लगभग 1.45 लाख रुपये का लाभ अर्जित करते हुए सेब के 1,800 क्लोनल रूटस्टॉक्स का ही उत्पादन कर पा रहे थे। वर्ष 2021 में अधिक मुनाफा कमाने के लिए इन्होंने संस्थान की मदद तथा उचित मार्गदर्शन से 'संरक्षित परिस्थितियों में नर्सरी का लंबवत विस्तार' तकनीक को अपनाया और धीरे-धीरे अपने कार्यक्षेत्र का विस्तारण किया।

शुरूआत में उन्हें निवेश, उत्पादन सामग्री, श्रम, पारिवारिक असहयोग आदि बहुत सारी समस्याओं का सामना करना पड़ा। धीरे-धीरे वह अपने सभी कामों को सुचारू ढंग से तथा समय पर करने में समर्थ हो गये। वह ग्राफ्टिंग/बडिंग रूटस्टॉक्स के लिए उपयुक्त एवं अच्छी तरह से विकसित रूट सिस्टम के साथ अतिरिक्त 7,200 स्वस्थ पौधों के उत्पादन में सफल रहे इसके साथ ही 1,800 रूटस्टॉक्स की शुरुआती उत्पादन क्षमता से उन्हें रु. 4.30 लाख का अतिरिक्त लाभ भी प्राप्त हुआ।

श्री कुमार प्रौद्योगिकी को अपनाने के लिए अन्य किसानों को प्रशिक्षण और प्रेरित करके इस क्षेत्र के ब्रांड एंबेसडर भी बने। राज्य के अन्य नर्सरी उत्पादकों के हित को ध्यान में रखते हुए, संस्थान ने दिसंबर, वर्ष 2021 में श्री पवन कुमार के साथ 20 प्रगतिशील नर्सरी उत्पादकों के समूह को 'समशीतोष्ण फल फसलों में गुणवत्ता रोपण सामग्री उत्पादन' पर पांच दिवसीय प्रशिक्षण भी प्रदान किया।

परिचय

- वर्ष 2015 में श्री कुमार ने 105 वर्ग मीटर के ग्रीनहाउस क्षेत्र में छोटे पैमाने पर क्लोनल रूटस्टॉक्स को उगाना शुरू किया।
- श्री पवन कुमार गौतम ने 'संरक्षित परिस्थितियों में नर्सरी की लंबवत विस्तार' तकनीक को अपनाया।
- वे इस क्षेत्र के ब्रांड एंबेसडर भी बने।
- शुरुआती उत्पादन क्षमता से उन्हें रु. 4.30 लाख का अतिरिक्त लाभ भी प्राप्त हुआ।

इस प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य बड़े पैमाने पर इसके प्रचार के लिए प्रौद्योगिकी का विस्तृत प्रदर्शन था। इस प्रौद्योगिकी ने न केवल छोटी नर्सरी में संलग्न लोगों को अपने कार्य में सुधार लाने के लिए उनका पथ प्रशस्त किया है,अपितु छोटे स्तर से स्वयं को आत्मनिर्भर होने की प्रेरणा भी दी है और अन्य देशों से क्लोनल रूट स्टॉक के आयात पर निर्भरता को भी कम किया है। ■

भिंडी किस्म - काशी चमन से मुनाफा

वाराणसी में बंगालीपुर गांव के श्री उपेंद्र सिंह पटेल ने 10 जुलाई, 2021 को 10 बिस्वा (0.3 एकड़) भूमि में वर्ष 2019 में भाकृअनुप-भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी, उत्तर प्रदेश द्वारा विकसित भिंडी (किस्म-काशी चमन) के बीज बोए थे। इसके उत्पादन के लिए संस्थान द्वारा दी गई तकनीकी सलाह का पालन किया था। उन्होंने संस्थान के वैज्ञानिकों द्वारा सुझाए गए अनुशंसित उर्वरकों और रसायनों का भी उपयोग किया था।

भिंडी के फल की पहली उपज 46 दिनों बाद यानी 25 अगस्त, 2021 को काटी गई थी। उसके बाद, उन्होंने 3 से 4 दिनों के अंतराल में 35 से 40 किलोग्राम भिंडी की नियमित फसल प्राप्त की थी और अंत तक 19 बार फसल ले चुके थे। इस प्रकार 90 दिनों की अवधि में कुल 668 किलोग्राम उपज के साथ 0.3 एकड़ भूमि से शुद्ध लाभ 21,376/- रु. था, जो खेती और बाजार में परिवहन लागत में कटौती के बाद शुद्ध लाभ था।

इसकी खेती गर्मी और बरसात दोनों मौसमों में की जा सकती है। यह किस्म येलो वेन मोजेक वायरस (वाईवीडब्ल्यूवी) और ओकरा एनेशन लीफ कर्ल वायरस (ओईएलसीवी) रोगों के प्रति सहनशील है। ये भिंडी की फसल के लिए सबसे खतरनाक रोग हैं भिंडी की खेती में एक बड़ी समस्या का यह कारण है। इस किस्म की उपज क्षमता इस क्षेत्र में प्राप्त उपज से 21.66% अधिक है, जिसके कारण यह किस्म उत्तर प्रदेश, बिहार, ओडिशा में अत्यधिक लोकप्रिय हो रही है

भिंडी सब्जी फसलों में सबसे महत्वपूर्ण है। इसमें कई पोषक तत्व जैसे विटामिन-सी और के पाए जाते हैं। यह भिन्डी की किस्म एंटी-ऑक्सीडेंट से समृद्ध है जो गंभीर रोगों के जोखिम को कम करती है, शरीर में सूजन को कम करती है और समग्र स्वास्थ्य में योगदान देती है। इसमें पॉलीफेनोल्स होते हैं जो दिल और दिमाग के स्वास्थ्य के लिए फायदेमंद होते हैं। भिंडी में लेक्टिन नाम का प्रोटीन भी होता है और यह कैंसररोधी होता है। ■

भाकृअनुप
ICAR

फल फूल

वैज्ञानिक बागवानी की लोकप्रिय द्विमासिकी
वर्ष: 43, अंक: 4, नवंबर-दिसंबर 2022

संपादन सलाहकार समिति

1. **डॉ. आनंद कुमार सिंह** — **अध्यक्ष**
   उपमहानिदेशक (बागवानी)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
2. **डॉ. सुरेश कुमार मल्होत्रा** — **सदस्य**
   परियोजना निदेशक (डीकेएमए)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
3. **डॉ. नीलिमा गर्ग** — **सदस्य**
   निदेशक
   भाकृअनुप-केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ
4. **डॉ. डी के समादिया** — **सदस्य**
   निदेशक
   भाकृअनुप-केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर, राजस्थान
5. **डॉ. एस एस सिंधू** — **सदस्य**
   विभागाध्यक्ष
   पुष्प विज्ञान विभाग, भाकृअनुप-भाकृअनुसं, नई दिल्ली
6. **प्रो. राजेश्वर सिंह चंदेल** — **सदस्य**
   कुलपति
   डॉ. वाई एस परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय नौनी, हिमाचल प्रदेश
7. **श्री शरद पांडे** — **सदस्य**
   कृषि पत्रकार
8. **श्री कंवल सिंह चौहान** — **सदस्य**
   प्रगतिशील किसान
9. **श्री अशोक सिंह** — **सदस्य सचिव**
   प्रभारी, हिंदी संपादकीय एकक (डीकेएमए)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

संपादक
अशोक सिंह
संपादन सहयोग
सुनीता अरोड़ा

प्रभारी (उत्पादन एकक)
पुनीत भसीन
मुख्य तकनीकी अधिकारी/उत्पादन
कुलभूषण गुप्ता

प्रभारी (व्यवसाय एकक)
जे.पी. उपाध्ये

दूरभाष: 011-25843657
E-mail: bmicar@icar.org.in
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन, पूसा गेट, नई दिल्ली-12
एक प्रति: रु. 30.00   वार्षिक : रु. 150.00

E-mail : phalphul@gmail.com

डिस्क्लेमर
लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं। उनसे भाकृअनुप की सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों तथा अन्य सामग्री का कॉपीराइट अधिकार भाकृअनुप-डीकेएमए के पास सुरक्षित है। इन्हें पुन: प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की अनुमति अनिवार्य है। रसायनों-कीटनाशकों की डोज संबंधित संस्तुतियों का प्रयोग विशेषज्ञों से परामर्श के बाद करें। समस्त विवादों के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

विषय सूची

संपादकीय — गागर में सागर है 'फल फूल' का यह अंक —**अशोक सिंह**

स्वाद
केला एक, व्यंजन अनेक — 4
दिनेश कुमार अग्रवाल, अर्जुन सिंह, पी. सुरेश कुमार, डी. अमेलिया केरन **और** एस. उमा

प्रबंधन
बीजीय धनिया का उन्नत उत्पादन — 6
गिरधारी लाल कुमावत, अमर चन्द शिवरान **और** एस. एस. पूनियां

सफलता गाथा
आंवला प्रसंस्करण से कमाई — 9
बी.एल. आसीवाल, महेश चौधरी **और** लालाराम

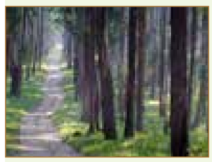
देखभाल
बागवानी और वानिकी पौधों की सस्य क्रियाएं — 10
राजेश कथवाल, सुलेमान मोहम्मद **और** विरेन्द्र दलाल

आय
चिरौंजी की बागवानी — 12
नंदकिशोर ठोंबरे, लोकेश मीना **और** निरंजन प्रसाद

उत्पादकता
मृदा में पोषक तत्वों को बढ़ाते जैविक पलवार — 14
शिवानी रंजन **और** सुमित सौ

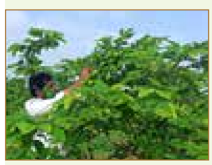
विधि
हस्त परागण बढ़ाए शरीफे की उपज — 16
निर्मल कुमार मीना, लाधुराम, सुमन चौधरी, भगवती **और** रूपा

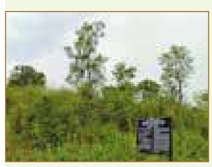
महत्व
गुग्गल की उन्नत खेती — 18
देवी लाल धाकड़, शिवम मौर्य, रायपाटिकार्तिक, कुलदीप सिंह **और** आदित्य चौधरी

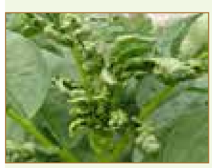
रोकथाम
मिर्च में नाशीजीवों का समेकित प्रबन्धन — 20
राजेंद्र नागर, दयानंद, रशीद खान, आर एस राठोड़ **और** विमल नागर

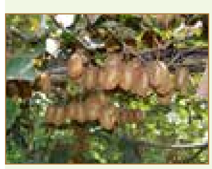
प्रवर्धन
कीवी का व्यावसायिक उत्पादन — 22
सन्नी शर्मा, विशाल सिंह राणा, नीरजा राणा, विजय कुमार **और** उमेश शर्मा

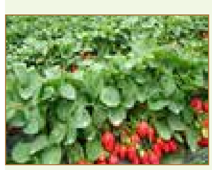
फलोत्पादन
उत्तर भारत में स्ट्रॉबेरी की खेती — 24
तेजबल सिंह, जे.एस. बोहरा, प्रियांशु सिंह **और** आनन्द कुमार सिंह

विषय सूची

28
मृदा पोषण
नैनो उर्वरकों का जीरा उत्पादन में योगदान
योगेन्द्र कुमार, ए. पी. सिंह, किशन सिंह, तरुणेन्दु सिंह **और** के. एन. तिवारी

30
बागवानी
लीची में पोषण प्रबन्धन
मनु त्यागी, जगदीश सिंह, नवप्रेम सिंह **और** बिक्रमजीत सिंह

33
सगंधीय
खस-खस की वैज्ञानिक खेती
सन्तोष चौधरी, नन्द किशोर जाट **और** सुधीर कुमार

35
मूल्यवर्धन
लहसुन प्रसंस्करण की बढ़ती महत्ता
रितु सिंह **और** पी के गुप्ता

37
पोषण
जनजातीय क्षेत्र में कुल्थी की खेती
अमितेश कुमार सिंह, राकेश कुमार, सूर्य भूषण, रवि शंकर **और** अमित कुमार सिंह

39
तकनीक
प्लास्टिक का उद्यानिकी में उपयोग
पंकज नौटियाल, गौरव पपनै, नीरज जोशी **और** वरुण सुप्याल

41
औषधीय
अदभुत एलोवेरा
दीपक कोहली

42
उपयोगिता
अरारोट की खेती में संभावनाएं
विजय लक्ष्मी दास, पंकज कुमार सिंह **और** राजेंद्र कुमार

45
जानकारी
नवम्बर-दिसम्बर में बागवानी कार्यकलाप
हरे कृष्ण, अरविंद कुमार सिंह, रामकेश मीणा **और** पुष्पेंद्र प्रताप सिंह

सार समाचार
- **सेब में क्लोनल रूटस्टॉक्स तकनीक से बदला जीवन** **आवरण-II**
- **भिंडी किस्म-काशी चमन से मुनाफा**

सामयिक
पेड़-पौधों में मौजूद हैं गुर्दे बचाने के औषधीय गुण **आवरण-III**

संपादकीय

गागर में सागर है '*फल फूल*' का यह अंक

आपकी अपनी बागवानी पत्रिका '*फल फूल*' का नया अंक आपके सम्मुख है। इस अंक में भी फलों और सब्जियों के अलावा अन्य औषधीय पौधों से संबंधित जानकारियों पर आधारित लेखों को शामिल किया गया है। सुधी पाठकों एवं बागवान भाइयों को नई एवं उन्नत वैज्ञानिक जानकारियों के प्रति जागरूक करना तथा उन्हें परंपरागत तौर-तरीकों के स्थान पर नवोन्मेषी तकनीकों का प्रयोग करने के लिए प्रेरित करना ही हमारी पत्रिका के प्रकाशन का मुख्य उद्देश्य है। गत चार दशकों से निरंतर प्रकाशित की जा रही इस पत्रिका की यह भी विशेषता है कि भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अनुसंधान तंत्र में विकसित नई कृषि तकनीकों को किसानों की अपनी भाषा में पहुंचाने का भरसक प्रयत्न किया जाता है।

प्रस्तुत अंक में भी कुछ सामयिक एवं नवीन विषयों को शामिल किया गया है ताकि समय रहते इन बागवानी फसलों और नवीन तकनीकों से बागवान सीधे वैज्ञानिकों द्वारा लिखे गए लेखों के माध्यम से लाभ उठा सकें। विशेषतौर पर प्रगतिशील किसान तो इन नवोन्मेषी प्रणालियों का प्रयोग अपने खेतों तथा बागों में करने का साहस अवश्य करते हैं और उनकी सफलता को देखकर अन्य कृषक भी बाद में अनुसरण करते हैं। कहने की जरूरत नहीं कि इस प्रकार नए कृषि ज्ञान का प्रकाश फैलता है और परंपरागत कृषि पद्धतियों के स्थान पर वैज्ञानिक तकनीकों का प्रचार-प्रसार भी बढ़ता है। संभवतः इसी बदलती सोच एवं पूर्वाग्रहों से बाहर निकलते कृषक भाइयों की मेहनत का नतीजा है कि साल दर साल रिकार्ड फल एवं सब्जियों का उत्पादन कर पाना संभव हो पाया है।

अब जरा एक नजर डालते हैं इस अंक में शामिल लेखों की उपयोगिता एवं महत्व पर। यह सर्वविदित है कि कच्चे फलों/सब्जियों के स्थान पर इनके प्रसंस्करित उत्पाद तैयार कर बेचने से बेहतर विक्रय मूल्य की प्राप्ति होती है। आंवला प्रसंस्करण पर आधारित श्री भंवर लाल बगडिया के अनुभवों पर आधारित लेख को इसी सोच के साथ इस अंक में शामिल किया गया है। व्यावसायिक महत्व के कृषि उत्पादों में चिरौंजी का अपना विशिष्ट स्थान है और इसकी खेती की सटीक जानकारी सुधी पाठक प्रकाशित लेख से हासिल कर सकते हैं।

इसी प्रकार औषधीय एवं सगंधीय पौधों में गुग्गल कम महत्वपूर्ण नहीं है। गुग्गल से प्राप्त गोंद का इस्तेमाल एलोपैथी, यूनानी तथा आयुर्वेदिक औषधियों के उत्पादन में किया जाता है। एलोवेरा के बारे में लोगों को ज्यादा पता नहीं है कि इसकी प्रसाधन उद्योग में कितनी अधिक मांग है। इसके महत्व पर लेख में संक्षिप्त चर्चा की गई है। मिर्च की फसल में नाशीजीव से होने वाले नुकसान से बचाव के तरीकों को भी एक अन्य लेख में बताया गया है। इसी प्रकार कीवी, स्ट्रॉबेरी एवं लीची की नई किस्मों एवं अधिक उत्पादन लेने के गुर के बारे में अत्यंत सरल भाषा में दी गई जानकारी पर आधारित लेखों से व्यावसायिक खेती करने वाले बागवान अपनी आमदनी को बढ़ा सकते हैं। जीरा की उपज बढ़ाने में नैनो उर्वरकों का किस हद तक योगदान होता है, इस बाबत भी एक अन्य लेख में उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार खस-खस, लहसुन आदि पर भी ज्ञानवर्द्धक लेखों को इस अंक में अन्य स्थायी स्तम्भों के साथ स्थान दिया गया है।

उम्मीद करते हैं कि '*फल फूल*' पत्रिका के इस अंक में संकलित लेख बागवानों के लिए उपयोगी तथा इनमें निहित जानकारियां उत्पादन बढ़ाने में मददगार सिद्ध होंगी।

(अशोक सिंह)

केला एक, व्यंजन अनेक

दिनेश कुमार अग्रवाल*, **अर्जुन सिंह***, **पी. सुरेश कुमार***, **डी. अमेलिया केरन*** और **एस. उमा***

मानव स्वास्थ्य एवं पोषण में केले के फल और महत्त्व से सभी भली-भांति परिचित हैं। परन्तु क्या आप जानते हैं कि सीधे फल के रूप में खाए जाने के अतिरिक्त भी केले से कई व्यंजन हमारे रसोईघरों में बहुत ही आसानी से बनाये जा सकते हैं तथा उनका आनंद लिया जा सकता है।

केले के कुछ व्यंजन पूर्व से ही हमारे देश के कुछ हिस्सों में अथवा विदेशों में प्रचलित तथा लोकप्रिय हैं।

केला ब्रेड और नारियल बन

रेसिस्टेंट स्टार्च और कम ग्लाइसेमिक इंडेक्स के मद्देनजर, डिजाइनर ब्रेड बनाने के लिए हरे केले के आटे का उपयोग किया जा सकता है।

सामग्री: मैदा-700 ग्राम; केले का आटा - 300 ग्राम; खमीर -15 ग्राम; चीनी -300 ग्राम; दूध पाउडर -20 ग्राम; वनिला पाउडर 10 ग्राम; नमक -15 ग्राम और वनस्पति घी -200 ग्राम

बनाने की विधि: यीस्ट और चीनी को थोड़े से गर्म पानी में घोलें और 15 मिनट के लिए खमीर उठने के लिए छोड़ दें। सूखी सामग्री को छान लें और उसमें वनस्पति और खमीर का मिश्रण अच्छी तरह मिला लें तथा 20-25 मिनट के लिए अच्छी तरह से गूंध लें। इस आटे को लगभग 30 मिनट के लिए छोड़ दें और फिर इसे 15 मिनट के लिए फिर अच्छी तरह से गूँधे। इसके बाद आटे को 6 पेड़ों (लोव्स) (प्रत्येक लगभग 350 ग्राम) में विभाजित करें और घी लगे सांचे में डालें। इन पेड़ों को दूसरी प्रूफिंग के लिए लगभग 4 घंटे के लिए छोड़ दें। तत्पश्चात 220 डिग्री सेल्सियस पर 45 मिनट के लिए बेक करें और फिर इन्हें सांचे से निकालकर ठंडा होने दें। इसी प्रक्रिया से बन भी बनाया जा सकता है।

*भाकृअनुप-राष्ट्रीय केला अनुसंधान केंद्र, तिरुचिरापल्ली (तमिलनाडु)

केला ब्रेड

नारियल बन

नारियल बन के लिए, एक कटोरी में 200 ग्राम चीनी, टूटी-फ्रूटी और ताजा नारियल भरने के लिए मिलाएं। फिर गूँधे गए आटे को विभाजित कर, भरावन को परतों के बीच रखकर पकाने की प्रक्रिया को पूर्व वर्णित तरीके से पूरा करें।

स्पंज केक

स्पंज केक में आमतौर पर लीवनर्स (फुलाने वाले पदार्थ) जैसे बेकिंग पाउडर का उपयोग नहीं होता है। इसकी बजाय, अंडे या अंडे की सफेदी और तेल/घी को फेंटकर आयतन बढ़ाया जाता है।

स्पंज केक

सामग्री: मैदा-300 ग्राम; केले का आटा-100 ग्राम; चीनी-370 ग्राम; अंडा-8 नग; घी-200 मिली; दूध पाउडर-15 ग्राम; वनीला पाउडर-10 ग्राम

बनाने की विधि: अंडे और चीनी की सहायता से क्रीम बना लें। सूखी सामग्री और घी डालें तथा इन्हें अच्छी तरह से मिला लें। फिर इस मिश्रण को तेल लगी ट्रे में डालें और 120°C पर बेक करें। ठंडा होने दें और फिर जरूरत के हिसाब से काट लें।

केले के पफ्स

पफ्स एक हल्की, परतदार, नमकीन पेस्ट्री है जिसमें फूली हुई पपड़ियों की कई परतें होती हैं।

सामग्री: मैदा-700 ग्राम; केले का आटा-300 ग्राम; नमक-15 ग्राम; चीनी-50 ग्राम; वनिला पाउडर-10 ग्राम; मिल्क पाउडर-10 ग्राम और मक्खन अथवा तेल-400 ग्राम

भरने के लिए: गाजर-150 ग्राम; बीन्स-150 ग्राम; आलू-150 ग्राम; प्याज-200 ग्राम; टमाटर -150 ग्राम; मिश्रित मसाला-25g

बनाने की विधि: सभी सूखी सामग्रियों को मिलाकर पानी से नरम आटा गूंध लें और आटे को लगभग १/२ इंच मोटे बड़े आयताकार शीट में बेल लें। अब आटे के ऊपर नरम मक्खन फैलाएं। इसे दो बार मोड़िये, लपेटिये और 30 मिनट तक फूलने के लिये रख दीजिये। वेज मसाला बनाने के लिये सब्जियों को उबालकर मसाले डालिये और अच्छी तरह से भूनिये। तैयार आटे को फिर से बेलिये और 6 बार इस प्रक्रिया को दोहराइये। इसके बाद आटे को 1/2 इंच पतली शीट में फैलाकर छोटे आयताकार 7-15 सें.मी. में काटें और हर आयत शीट (10g) में मसाला भरकर मोड़

केले के पफ्स

लीजिये. और पफ शीट के ऊपर अंडे का लेप लगा दें। अब इसे 200 डिग्री सेल्सियस पर 30 मिनट के लिए बेक करें। इसे ठंडा होने दें और उपयोग के लिए पैक कर लें।

बनाना क्यू

बनाना क्यू एक विदेशी फिलीपिनी व्यंजन है। ये गोल्डन फ्राइड ब्राउन शुगर लेपित चिपचिपे केले हैं।

सामग्री: पका हुआ केला- 6 नग; ब्राउन शुगर- 200 ग्राम; खाना पकाने का तेल-500 मिली

बनाने की विधि: मध्यम आँच पर तेल गरम करें और इसमें ब्राउन शुगर डालें और तब तक पकाएं जब तक कि चीनी कैरामेलाइज (शुष्क शर्करित) न होने लगे। छिलके वाले केले को तेल में डालें और ब्राउन शुगर के साथ तब तक तलें जब तक कि वे चिपचिपी ब्राउन शुगर से लेपित हो गहरे सुनहरे रंग में न आ जाएं। एक बार पूरी तरह से पक जाने के बाद इसे पेपर टॉवल पर निकाल लें और अलग-अलग तीलियों (स्कुवर्स) में लगाकर परोसें।

बनाना क्यू

केले के पैनको

पैनको पश्चिमी देशों में घर के बने नाश्ते में मुख्य है क्योंकि उन्हें सुपर फास्ट और विभिन्न संयोजनों में बनाया जा सकता है।

सामग्री

मैदा-200 ग्राम; केले का गूदा-200 ग्राम; चीनी-700 ग्राम; अंडा-8 नग; तेल -60 मिली; दूध-240 मि.ली.; नमक-2 ग्राम; बेकिंग पाउडर-4 ग्राम।

बनाने की विधि

सभी सूखी सामग्री को एक साथ मिला लें। एक अलग कटोरी में केले की प्यूरी, अंडा, दूध और तेल को एक साथ मिला लें। गीली और सूखी सामग्री को एक साथ मिलाएं और इसे कुछ मिनटों के लिए रख दें। एक गरम तवे पर, 200 मि.ली. से अधिक चम्मच से घोल डालें और धीरे से फैलाएं। एक पतले स्पेचुला से पलटें, और दो मिनट के लिए पकाएं। इसे अपनी पसंद की टॉपिंग के साथ परोसा जा सकता है।

केला पुडिंग

केला पुडिंग एक फास्ट केक रेसिपी है। यह नम और स्वादिष्ट होता है और बच्चों को केला खाने के लिए ललचाने का सबसे अच्छा तरीका है।

सामग्री

मैदा-500 ग्राम; केले का गूदा-500 ग्राम; चीनी-700 ग्राम; अंडा-8 नग; तेल/घी-500 मिली; सत्त्व-2ml

बनाने की विधि

अंडे और चीनी को ३ मिनट तक फेंटें, उसमें घी, केले की प्यूरी, मैदा और एसेंस (सत्त्व) डालकर अच्छी तरह मिला लें। फिर, इस मिश्रण को ग्रीस किए हुए सांचे में डालें और इसे 180°C पर 25 मिनट के लिए बेक करें। इसे ठंडा होने दें तथा फिर सांचे से निकालकर जरूरत के अनुसार स्लाइस में काट लें। हनी केक बनाने के लिए, एक सादे वनिला स्पंज केक को चीनी की चाशनी में भिगोया जा सकता है और जैम से चमकाया (ग्लेजिंग) जा सकता है।

पलम पोरी (केले के पकौड़े)

सामग्री: मैदा-250 ग्राम; केला (प्लांटेन किस्म) -5 नग; चावल का आटा-50 ग्राम; नमक -2 ग्राम; बेकिंग सोडा-2 ग्राम; हल्दी-1 ग्राम; चीनी-10 ग्राम; इलायची पाउडर-1 ग्राम; तलने के लिए तेल

पलम पोरी

बनाने की विधि: सभी सूखी सामग्री को एक साथ मिलाएं और चिकना घोल बनाने के लिए पर्याप्त पानी डालें। छिले केले को लगभग 2 इंच लंबे टुकड़ों में काट लें। केले के टुकड़ों को बनाए हुए घोल में डुबोकर गर्म तेल में डालिये। सुनहरा भूरा होने तक तले हुए केले के पकौड़े को अवशोषक (अब्सॉर्बेंट) पेपर से ढकी प्लेट में निकाल लें।

केला स्मूदी पेय: केला स्मूदी पेय गर्मियों के दौरान एक आदर्श प्यास बुझाने वाला पेय है।

केला स्मूदी पेय

सामग्री: पका हुआ केला-6 नग; कसा हुआ नारियल-200 ग्राम; चीनी-10 ग्राम; इलायची पाउडर-1 ग्राम

बनाने की विधि: छिले हुए केलों को छोटे छोटे टुकड़ों में काट लें। इसमें शक्कर मिलाकर एक तरफ रख दें। नारियल का दूध बनाने के लिए कद्दूकस किया हुआ नारियल लें और इसे 250 मिली पानी के साथ पीसकर चिकना पेस्ट बना लें। इसमें इलायची को पीसने से पहले ही मिला लेना चाहिए और अंत में पसंदीदा सत्व को भी मिलाया जा सकता है। कटे हुए केले में निकाला हुआ नारियल का दूध डालें और इसे अच्छी तरह मिलाएं।

बीजीय धनिया का उन्नत उत्पादन

गिरधारी लाल कुमावत*, **अमर चन्द शिवरान**** और **एस. एस. पूनियां*****

बीजीय मसालों में धनिया का प्रमुख स्थान है। यह दानों एवं पत्तियों दोनों के लिए ही उगाया जा सकता है। धनिया का प्रयोग भोजन को सुगन्धित व स्वादिष्ट बनाता है। इसकी पत्तियों में शर्करा, प्रोटीन व विटामिन 'ए' पाया जाता है। धनिया का औषधि के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। भारत में धनिया की खेती प्रमुख रूप से राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात, तमिलनाडु व आंध्रप्रदेश में की जाती है। राजस्थान में धनिये की खेती मुख्यत: कोटा, झालावाड़, बूंदी, सवाईमाधोपुर, बारां, अलवर, सीकर, जयपुर व चित्तौड़गढ़ में की जाती है।

धनिया की फसल के लिए शुष्क एवं ठंडा मौसम अनुकूल रहता है। फसल को ऊष्ण व मध्य जलवायु वाले क्षेत्रों में, जहां तापमान अधिक न हो तथा वर्षा का वितरण ठीक हो, सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।

भूमि

सिंचाई की व्यवस्था हो तो धनिया की खेती लगभग सभी प्रकार की भूमि में की जा सकती है लेकिन दोमट भूमि इसके लिए अधिक उपयुक्त होती है।

खेत की तैयारी

सिंचित फसल के लिए हल्की मिट्टी में कम व भारी मिट्टी में अधिक जुताई करके खेत को तैयार करें। मिट्टी पलटने वाले हल से एक जुताई करके, एक या दो जुताई देसी हल या हैरो चलाकर मिट्टी को भुरभुरी बना लें तथा शीघ्र ही पाटा लगा देना चाहिए जिससे नमी का ह्रास न हो।

धनिया की उन्नत किस्में

आर. सी. आर. 446, आर. सी. आर. 480, आर. सी. आर. 684, अजमेर धनिया-1, अजमेर धनिया-2, आर.के.डी-18, गुजरात धनिया-1, गुजरात धनिया-2, Co-1, Co-2 उन्नत किस्में हैं।

खाद एवं उर्वरक

धनिया की फसल में 15-20 टन प्रति हैक्टर की दर से गोबर की खाद खेत में मिलाएं। इसके अतिरिक्त असिंचित फसल में बुआई के पहले 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन एवं 30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस प्रति हैक्टर की दर से डालें। सिंचित फसल में 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन एवं 30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस प्रति हैक्टर दें। नाइट्रोजन की एक तिहाई मात्रा व फॉस्फोरस की पूरी मात्रा बुआई से पहले दें। शेष नाइट्रोजन में से 20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर बुआई के 30 दिनों बाद व 20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर नाइट्रोजन बुआई के 75 दिनों बाद डालें। जस्ता, लोहा, मैंगनीज व तांबा सूक्ष्म तत्वों के लिए इनके उर्वरकों का प्रयोग भी लाभदायक रहता है।

बीज की मात्रा एवं बीजोपचार

बीज के आकार के अनुसार असिंचित खेती के लिए 15-20 कि.ग्रा. जबकि सिंचित खेती के लिए 10-12 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त है। बीज को विभाजित करके बोयें। विभाजित बीज को बाविस्टीन 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज या अन्य उपयुक्त कवकनाशी दवा के 2.0 ग्राम प्रति कि.ग्रा. से उपचारित करके बोयें।

*सह. आचार्य, पौध व्याधि; **आचार्य, सस्य विज्ञान; ***सहा. आचार्य, वरिष्ठ प्रजनक;
अखिल भारतीय समन्वित मसाला अनुसंधान परियोजना, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि महाविद्यालय, जोबनेर, जयपुर (राजस्थान)

बुआई का तरीका एवं समय

बुआई पंक्तियों एवं छिटकवां विधि से की जाती है किन्तु अंतर सस्य क्रियाओं को सही रूप से करने के लिए 30 सें. मी. के अंतर पर पंक्तियों में बुआई करें। धनिया की बुआई 15 अक्टूबर से 15 नवम्बर तक की जाती है। जल्दी बुआई से बढ़वार तो अच्छी होती है परन्तु ज्यादा तापमान के कारण अंकुरण कम होता है जबकि देरी से बुआई करते हैं तो फसल पर चेंपा कीट और रोगों का प्रकोप अधिक होता है।

सिंचाई

सिंचित फसल में किस्म, भूमि की जल धारण क्षमता व मौसम के आधार पर अंकुरण के पश्चात 4 से 6 सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ती है। पहली सिंचाई बुआई के 30 से 35 दिनों बाद, दूसरी 50-60 दिनों बाद, तीसरी 70-80 दिनों बाद, चौथी 90-100 दिनों बाद, पांचवी 105-115 दिनों बाद और छठी सिंचाई 115-125 दिनों बाद करनी चाहिए। असिंचित फसल अधिकतर बारानी होती है।

निराई-गुड़ाई एवं खरपतवार नियन्त्रण

बारानी फसल में बुआई के 30 दिनों बाद एक निराई-गुड़ाई करें, सिंचित फसल में 30 दिनों बाद एवं 60 दिनों बाद दो निराई गुड़ाई करें। धनिया में खरपतवार जल्दी बढते हैं एवं धनिया के पौधे धीरे-धीरे बढ़ते हैं अत: सही समय पर निराई-गुड़ाई अवश्य करें।

प्रमुख बीमारियां एवं रोकथाम

छाछ्या (पाउडरी मिल्ड्यू)

प्रारम्भिक अवस्था में पौधों की पत्तियों व टहनियों पर सफेद चूर्ण दिखाई देता है। रोग का प्रकोप अधिक होने पर पूरा पौधा चूर्ण से ढक जाता है जिससे पौधों पर बीज नहीं बनते हैं या बीज छोटे व बहुत कम बनते हैं। इससे बीजों की गुणवत्ता में कमी आ जाती है।

तना पिटिका रोग

नियन्त्रण

इस रोग के नियन्त्रण हेतु खेत की सफाई करें। गन्धक चूर्ण का 20-25 कि.ग्रा प्रति हैक्टर की दर से बुरकाव करना चाहिए या केराथेन ई.सी. 0.1 प्रतिशत या हैक्साकोनाजोल 5 प्रतिशत एस. सी. (1.0 मिली/लीटर पानी) का घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए। इसे आवश्यकतानुसार दोहराना भी चाहिए।

तना पिटिका रोग (स्टेम गॉल)

पौधों की पत्तियों, वृंत तथा तने पर विभिन्न आकार के फफोले/ पिटिकाएं (गाल्स) बन जाते हैं। पुष्पक्रम पर आक्रमण होने पर बीजों का आकार बदलने से बीजों की शक्ल ही बदल जाती है। इस रोग के प्रकोप से बीज बेडौल हो जाते हैं। नमी की अधिकता होने पर इस रोग का प्रकोप बढ़ जाता है।

धनिये पर छाछ्या रोग का प्रकोप

नियन्त्रण

खेत को स्वच्छ रखना चाहिए। बीजों की बुआई से पूर्व बाविस्टीन 2 ग्राम या केलिक्सीन एक मि.ली. दवा प्रति किलो की दर से उपचारित करें। खड़ी फसल में बीमारी के लक्षण दिखाई देने पर केलिक्सीन एक मिली. या बाविस्टीन 1 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें। आवश्यकतानुसार इस प्रक्रिया को 10-15 दिन बाद दोहरायें। फूल आते समय इसका प्रयोग न करें।

उकठा (विल्ट)

यह रोग पौधों की किसी भी अवस्था में हो सकता है लेकिन बुआई के एक माह में अधिक प्रकोप होता है। रोगग्रसित पौधा हरा ही मुरझा जाता है। यह रोग पौधों की जड़ों में लगता है।

नियन्त्रण

गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करें। बीज हमेशा स्वस्थ फसल का ही प्रयोग करें। तीन वर्षीय फसलचक्र अपनाएं। बीजों की बुआई से पूर्व थीरम तथा बाविस्टीन 1:1 भाग के हिसाब से 3 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करके बुआई करें या ट्राइकोडर्मा 4 ग्राम प्रतिकिलो बीज के हिसाब से बीजोपचार करें।

उकठा रोग

झुलसा (ब्लाईट)

इस रोग का प्रकोप होने पर पौधों के तने व पत्तियों पर गहरे भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं तथा पत्तियां झुलसी हुई दिखाई देती हैं। वर्षा या नमी होने पर रोग की आशंका बढ़ जाती है।

नियन्त्रण

इस रोग के नियन्त्रण हेतु बाविस्टीन 0.1 प्रतिशत या मेन्कोजेब 0.2 प्रतिशत कवकनाशी का घोल बनाकर फसल पर छिड़काव करें। आवश्यकतानुसार 10-15 दिन के अन्तराल पर दोहरायें।

झुलसा रोग

प्रमुख कीट एवं नियन्त्रण

मोयला/चेंपा (एफिड)

धनिया की फसल पर मुख्यतः पुष्प आते समय व बीज बनते समय इस कीट का आक्रमण होता है। ये कीट पौधे के कोमल भागों से रस चूसते हैं।

मोयला/चेंपा

नियन्त्रण

कीटों के नियन्त्रण हेतु मैलाथियान 50 ई.सी. 1.0 मि.ली. या डाइमिथोएट 30 ई. सी. 1.0 मि. ली. मात्रा एक लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर सायंकाल के समय फसल पर छिड़काव करना चाहिए जिससे मधुमक्खियों को हानि न हो।

कट वर्म एवं वायर वर्म

इस कीट की सूंडी भूरे रंग की होती है। शाम के समय यह सूण्डी पौधों को जमीन की सतह के पास से काटकर गिरा देती है। इसका प्रकोप फसल की शुरू की अवस्था में होता है जिससे फसल को अधिक नुकसान पहुंचता है।

फसल का पाले से बचाव

फूल आते समय या दाना बनते समय पाला पड़ने से धनिये की फसल को अधिक नुकसान होता है। यदि समय से बचाव नहीं करेंगे तो उपज व गुणवत्ता में कमी आ जाती है।

बचाव

व्यापारिक गंधक का तेजाब 1 मि. ली. 1 लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। आवश्यकतानुसार 10-15 दिनों अंतराल पर पुनः दोहरायें। पाला पड़ने की आशंका होने पर फसल की सिंचाई करें तथा रात्रि में खेत में धुंआ करना चाहिए। फसल की उत्तर-पश्चिम दिशा में वायु प्रतिरोधक लगाएं।

नियन्त्रण

इस कीट के नियन्त्रण हेतु मैलाथियान 5 प्रतिशत चूर्ण 20-25 किलो प्रति हैक्टर की दर से भूमि में जुताई के समय मिलाएं।

बरूथी (माइट्स)

इसका प्रकोप दाना बनते समय होता है तथा पूरा पौधा हल्के पीले रंग का हो जाता है। इसका प्रकोप मुख्यतः नई पत्तियों व पुष्पक्रम पर होता है। इस रोग के कारण पौधा छोटा रह जाता है। यह छोटा कीट पत्तियों की निचली सतह पर दिखाई देता है।

नियन्त्रण

बरूथी के अधिक प्रकोप वाले स्थानों पर अक्टूबर के अंतिम सप्ताह से नवम्बर के प्रथम सप्ताह तक बुआई करने से इस कीट से फसल को कम हानि होती है। मोयला के नियन्त्रण के लिए काम में आने वाले कीटनाशकों का प्रयोग करें।

कटाई, गहाई एवं भण्डारण

धनिया की फसल 115-135 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। धनिया की कटाई, पौधों के मुख्य छत्रक पीले पड़ जाएं अथवा जब 50 प्रतिशत दाने पीले पड़ जाएं, तब करनी चाहिए। पौधों को जमीन के कुछ ऊपर दरांती से काटकर स्वच्छ सीमेंट के फर्श पर या तिरपाल पर छाया में सुखायें। दानों को धूप से बचायें जिससे इनका रंग खराब न हो या पुलियां बनाकर उनको उल्टा रखकर सुखायें तथा फिर ओसाई करके दानों को बोरियों में भर दें। यह ध्यान रखें कि इस समय दानों में अधिक नमी न हो।

उपज

सिंचित फसल से 12-15 क्विंटल तथा असिंचित फसल से 5-8 क्विंटल प्रति हैक्टर बीज की उपज प्राप्त होती है। ■

सफलता गाथा

आंवला प्रसंस्करण से कमाई

बी.एल. आसीवाल*, महेश चौधरी* और **लालाराम***

यह सफलता की कहानी कृषक श्री भंवर लाल बगडिया की है, जो राजस्थान के सीकर जिले की धोद पंचायत समिति के सरवडी गांव के निवासी हैं। इनके गांव में ज्यादातर किसान सरसों, गेंहू, प्याज, मूंगफली,ग्वार इत्यादि फसलों की खेती करते हैं। इन्हें परम्परागत तरीके से खेती से इतनी कम आमदनी हो पाती थी कि घर का खर्चा चलाना भी मुश्किल हो रहा था।

मार्गदर्शन से आज एक सफल उद्यमी के रूप में श्री भंवर लाल ने अपनी पहचान बना ली है। वर्ष 2008 में कृषि विज्ञान केन्द्र, फतेहपुर द्वारा इनके गाँव सरवडी(जिला-सीकर) में चना एवं गेंहू फसल के प्रथम पंक्ति प्रदर्शनों के दौरान कृषि वैज्ञानिकों से श्री भंवर लाल बगडिया (55 वर्ष) का सपर्क हुआ। उनकी पढ़ाई मात्र आठवीं तक की है और उनके पास 2.5 हैक्टर भूमि है। केन्द्र द्वारा गांव में विभिन्न प्रशिक्षण जैसे पशुपालन, जैविक खेती, फल एंव सब्जी, फसल उत्पादन इत्यादि आयोजित किए गये।

तकनीकी में बदलावः श्री बगडिया की रुचि फलदार पौधे लगाने तथा जैविक खेती में अधिक होने के कारण इन्होंने वर्ष 2008 में एक हैक्टर में उद्यान विभाग के सहयोग से आंवला, बेर तथा बेल का बगीचा तैयार किया। इन्होंने बताया कि शुरूआती दौर में तो आंवला के फलों की बिक्री सम्बन्धी कई समस्याओं का सामना करना पड़ा था, लेकिन एक दिन केवीके वैज्ञानिकों द्वारा छोटी इकाई शुरू करने के सुझाव ने तकदीर ही बदल दी। साथ ही वैज्ञानिकों ने आंवला के फलों से तैयार होने वाले उत्पादों आंवला मीठी कैण्डी, आंवला चूर्ण, अचार, मुरब्बा, फांकों वाला मुरब्बा आदि के बारे में जानकारी प्रदान की। वैज्ञानिकों की सलाहानुसार श्री बगड़िया ने अपने फार्म पर "दक्षिता आंवला मुरब्बा, सरवड़ी के नाम से आंवला प्रंसस्करण इकाई" का शुभारम्भ वर्ष 2014 में कर दिया। उनका कहना है कि आज आंकलन करता हूं तो पाता हूं कि जो आंवला बाजार में 8 से 10 रुपये प्रति किलोग्राम विक्रय हो पाता था वही आज प्रसंस्करण के पश्चात 100 से 150 रुपये प्रति किलोग्राम विक्रय हो रहा है। इस प्रकार अब से 12-13 लाख रुपये तक आमदनी प्राप्त करने में सफलता हासिल की।

तैयार प्रसंस्करित आंवला उत्पाद

श्री भंवर लाल बगड़िया

श्री बगड़िया जी इसके अतिरिक्त गांव की 4-5 महिलाओं एवं दो युवाओं को वर्षपर्यन्त रोजगार भी उपलब्ध करवा रहे हैं। श्री बगडिया अपनी प्रसंस्करण इकाई को विस्तृत रूप देने में बेर, बेल आदि के प्रसंस्करण हेतु भी अपना ज्ञान एवं रुचि बढा रहे हैं। कोविड-19 के दौरान आम जनता में आंवले के महत्व के प्रति जागरूकता से उनके आंवले के उत्पाद हाथों हाथ विक्रय हो रहे हैं। ■

आय में बृद्धि

श्री बगडिया के फार्म में 150 आंवलों के वृक्षों से औसतन एक क्विंटल प्रति वृक्ष से 150 क्विंटल आंवले की उपज प्राप्त होती है। साधारणतया आंवला बिक्री से जहां वर्ष 2012-14 तक इनको 1.0 से 1.5 लाख रुपये की ही आय प्राप्त हो पाती थी वहीं अब वर्ष 2019-20 सें आंवला प्रसंस्करण से औसतन 12 से 15 लाख रुपये वार्षिक आमदनी होने लगी है। श्री बगड़िया के अनुसार वर्तमान में इस आंवला प्रसंस्करण इकाई से 8-9 लाख रुपये प्रति वर्ष शुद्ध आय प्राप्त हो रही है।

*कृषि विज्ञान केन्द्र, फतेहपुर-शेखावटी, सीकर

बागवानी और वानिकी पौधों की सस्य क्रियाएं

राजेश कथवाल*, **सुलेमान मोहम्मद**** और **विरेन्द्र दलाल*****

वर्ष 2019 के आंकड़ों के अनुसार भारत में कुल वन क्षेत्र 712,249 वर्ग किलोमीटर है जो कि कुल भौगोलिक क्षेत्र का 21.67 प्रतिशत है। इसके विपरीत देश में वन और वृक्ष क्षेत्र 807,276 वर्ग किलोमीटर है और यह कुल भौगोलिक क्षेत्र का 24.56 प्रतिशत है। भारत में वृक्ष क्षेत्र लगभग 93815 वर्ग किलोमीटर है जो कुल भौगोलिक क्षेत्र का मात्र 2.85 प्रतिशत है। पश्चिमी घाट के क्षेत्र में सर्वाधिक वृक्ष आवरण क्षेत्र 8.31 प्रतिशत है। वृक्ष आवरण क्षेत्र में महाराष्ट्र का प्रथम स्थान है। यहाँ का वृक्ष आवरण क्षेत्र 9831 वर्ग किलोमीटर है। दूसरे स्थान पर राजस्थान है जिसका वृक्ष आवरण क्षेत्र 8266 वर्ग किलोमीटर है। इस आंकलन से पता चलता है कि हमारे देश में वृक्षों का अभाव है, जिससे आने वाले समय में प्रदूषण बढ़ेगा और मानव शरीर पर इसका दुष्प्रभाव पड़ेगा।

किसान अपने खेत में पानी के नालों के किनारे, कोठों के आसपास, ट्यूबवैल वाले स्थानों पर फलों के पौधे या वानिकी के पौधे लगाने में काफी रुचि लेते हैं।

खेजड़ी की शाखाओं से पौष्टिक चारा

उचित समय

खेजड़ी-अप्रैल से जून तक बीज पककर तैयार हो जाते हैं। बीजों से पौधे तैयार करने का समय जुलाई तक चलता है। वृक्षारोपण करने के लिए 5×5 मीटर की दूरी रखें। वृक्षारोपण के 5-7 वर्षों के बाद प्रत्येक पंक्ति से एक से दूसरे पौधे को हटा दिया जाता है। इस प्रकार वृक्ष से वृक्ष और पंक्ति से पंक्ति की दूरी 10 मीटर हो जाती है।

रोहिड़ा-मई और जून के दौरान इसके फल तैयार हो जाते हैं। पौधों की अंकुरण क्षमता फसल के तुरन्त बाद होती है। इसे भी जुलाई में तैयार किया जा सकता है। जब पौधा 9-12 महीने का हो तब उसे भुरभुरी मिट्टी में गहरा गाड़ दें जिससे कि वह अधिक देर तक जीवित रहे और बढ़ सके।

नीम-इस पौधे का वृक्षारोपण जुलाई-अगस्त में किया जाता है। वृक्षारोपण करने के लिए अप्रैल- मई में गड्ढे खोद लेने चाहिए। पौधशाला से दो वर्ष की अपेक्षा एक वर्ष पुरानी पौध अधिक अच्छी होती है।

शीशम-इस पौधे का वृक्षारोपण भी

सड़क के किनारे नीम के पेड़

*सहायक वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान विभाग), रामधन सिंह बीज फार्म, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार; **वरिष्ठ वैज्ञानिक (बागवानी विभाग), क्षेत्रीय बागवानी अनुसंधान केन्द्र, बूड़िया, यमुनानगर; ***सहायक वैज्ञानिक (वानिकी विभाग), बालसमन्द अनुसंधान फार्म, हिसार।

सिंचाई के नालों पर शीशम के पेड़

जुलाई और अगस्त के महीने में आसानी से किया जा सकता है। इसके लिए 30 सेंटीमीटर गड्ढ़े पहले ही खोद लेने चाहिए। कतार से कतार की दूरी 4 मीटर व पौधे से पौधे की दूरी 2.5 मीटर रखें। मिट्टी के साथ 2 किलोग्राम अच्छी सड़ी गोबर की खाद (एफ.वाई.एम.) और 15-20 मिलीलीटर क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. मिला दें।

बबूल-बबूल की बुआई के लिए जून व जुलाई सबसे उपयुक्त समय होता है। पौधे लगाने के लिए 4×4 मीटर की दूरी रखें। जहाँ अधिक मात्रा में वृक्ष लगाने हों वहाँ 5 से 10 मीटर की दूरी, एक कतार में वृक्ष लगाने के लिए रखें।

सफेदा-इस पौधे का वृक्षारोपण मानसून के दौरान जुलाई-अगस्त में होता है। जहाँ सिंचाई सुविधाएं उपलब्ध हैं, वहाँ पौध सितम्बर से फरवरी तक लगाएं। पौधों के अच्छे जमाव के लिए 3-4 सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ती है। गड्ढों का आकार 30-40 सेंटीमीटर गहरा होना चाहिए।

पोपलर- खेतों में इस वृक्ष के पौधे फरवरी के महीने में लगाने चाहिए। वृक्षारोपण से एक महीने पहले तीन फुट गहरे गड्ढ़े खोदकर मिट्टी बाहर निकाल दें। पोपलर लगाने के लिए गड्ढ़े तीन फुट गहरे अवश्य खोदें ताकि तेज हवा में पौधे न गिरें। ऊपर वाली 1.5 फुट मिट्टी में खाद की मात्रा 5 किलोग्राम की दर से मिलाकर पौधा लगाने के लिए तैयार रखें। पौधरोपण करने के लिए एक वर्ष की आयु वाले पौधों का चयन करें, जिनकी ऊँचाई 5-6 मीटर हो तथा तना अंगूठे की मोटाई का व बिना शाखाओं का हो।

महानीम-इसका वृक्षारोपण अक्तूबर के महीने से खोदे हुए गड्ढों में करना चाहिए। महानीम का वृक्ष शुष्क इलाकों में फसलों की तेज हवाओं से रक्षा करने और मृदा अपरदन को रोकने के लिए लगाया जाता है।

बागवानी के पौधे लगाने का समय

हरियाणा प्रदेश की जलवायु के अनुसार बाग लगाने के लिए जनवरी - फरवरी व अगस्त से अक्तूबर का समय अति उत्तम है। अंगूर, आड़ू, अलूचा, अनार, नाशपाती, आंवला व बेर आदि लगाने के लिए 15 दिसम्बर से 15 फरवरी तक का समय बहुत अच्छा रहता है। सदा हरे रहने वाले पेड़, जैसे नीबूवर्गीय पेड़, अमरूद, आम, बेर, लीची आदि को अगस्त से अक्तूबर तक लगाना चाहिए। इस समय मौसम कुछ ठण्डा व नम हो जाता है।

वैज्ञानिक सस्य क्रियाएं

जो किसान फल उत्पादन क्षेत्र में विकास करना चाहते हैं उन्हें विभिन्न वैज्ञानिक सस्य क्रियाओं का ज्ञान होना आवश्यक है।

नीबू-नीबू में नई पत्ती निकलने से पहले अर्थात् फरवरी-मार्च में व फल की बढ़ोतरी के समय अर्थात् अप्रैल से जुलाई में और मध्य सितम्बर से अक्तूबर के अंत में सिंचाई करना आवश्यक है। सर्दियों में 20 दिनों व गर्मियों में 10 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए। नींबू के नए बाग में पंक्तियों के बीच में लोबिया, मूंग, चना व मटर जैसी दाल वाली फसलें बोई जा सकती हैं।

नीबू

अमरूद-अमरूद में सिंचाई 10-15 दिनों के अंतराल पर करनी चाहिए। फूल व फल लगने के दौरान सप्ताह में एक बार सिंचाई अवश्य करनी चाहिए। बाग लगाने के 3-4 साल तक अमरूद के पौधों के बीच पपीता, लोबिया और चना आदि बोया जा सकता है।

आम-आम में फलों को गिरने से बचाने के लिए यूरिया के दो प्रतिशत घोल से पेड़ पर अप्रैल-मई के महीने में छिड़काव करना चाहिए। आम के बाग को लगाने का उचित समय जुलाई-सितम्बर तथा फरवरी-मार्च है। एक से तीन वर्ष के पौधों में 5-20 किलोग्राम गोबर की खाद, 100-200 ग्राम यूरिया, 250-500 ग्राम सिंगल सुपर फॉस्फेट व 175-350 ग्राम पोटेशियम सल्फेट का प्रयोग करना चहिए।

बेर-पौध को लगाने का समय अगस्त-सितम्बर है तथा पौधों को 15 जनवरी से फरवरी के प्रथम सप्ताह तक लगाया जा सकता है। सिंचित क्षेत्रों में पौधे से पौधे व कतार से कतार की दूरी 10 मीटर रखनी चाहिए। बेर के छोटे पौधों में 4-6 दिन के अंतर पर सिंचाई करनी चाहिए।

बेर

आंवला-इसके पौधों को अगस्त से सितम्बर व 15 जनवरी से 15 फरवरी तक लगाना चाहिए। गर्मियों में जब तक पौधे जड़ न पकड़ लें, हर 7-10 दिनों बाद सिंचाई करनी चाहिए। पौधे को 15 किलोग्राम गोबर की खाद प्रति वर्ष पौधे की आयु के हिसाब से देनी चाहिए। आधा किलोग्राम यूरिया और 2.5 किलोग्राम फॉस्फेट प्रति पेड़ के हिसाब से फरवरी माह व जुलाई में आधा किलोग्राम यूरिया खाद डालनी चाहिए।

चिरौंजी की बागवानी

नंदकिशोर ठोंबरे*, **लोकेश मीना*** और **निरंजन प्रसाद***

चिरौंजी बीज का उपयोग भारत में सूखे मेवे के रूप में प्रचलित है। यह सभी प्रकार के मिष्ठान, पकवान आदि में प्रयोग किया जाता है। इस मूल्यवान मेवे की कीमत लगभग 1000 रुपए/किलोग्राम तक होती है। इसीलिए वनाश्रित लोगों के लिए जंगलों से इसका फल एकत्रित कर इसको बाजार में बेचना, आजीविका चलाने का महत्वपूर्ण विकल्प है। असीमित गुणवत्ता तथा उच्च बाजार मूल्य होने के बाद भी यह पेड़ केवल जंगल तक ही सीमित रह गया है। इसीलिए चिरौंजी के पेड़ को बागवानी में लाने की प्रचुर संभावनाएँ हैं, जिससे अधिक से अधिक लोग इससे लाभान्वित हो सकें।

चिरौंजी का पेड़ प्रायः जंगल में पाए जाने के कारण इसका संग्रहण, उत्पादन एवं व्यापार केवल स्थानीय लोगों तक ही सीमित रह गया है। इस पेड़ की व्यावसायिक क्षमता को ध्यान में रखते हुए, इसको जंगलों तक सीमित न रखते हुए, इसके उत्पादन को बढ़ाने के लिए इसे बागवानी में लाना होगा। चिरौंजी की व्यावसायिक बागवानी करने से किसान लाभान्वित हो सकते हैं। व्यावसायिक बागवानी में लाने से चिरौंजी के उत्पादन में वृद्धि होगी, जिससे इसका निर्यात भी किया जा सकता है। किसान इसकी बागवानी करके अपनी आय में वृद्धि कर सकते हैं और जीवनस्तर सुधार सकते हैं।

वितरण एवं संरचना

चिरौंजी का वृक्ष मुख्यतः सूखे पर्वतीय प्रदेशों के जंगलों में मिलता है। जैसे- पूर्वी-घाट, पश्चिमी-घाट, ओडिशा, हिमाचल प्रदेश, मध्यप्रदेश, छोटा नागपुर, आदि। प्राकृतिक रूप से सभी क्षेत्रों में पाए जाने के कारण इसकी बागवानी की संभावनाएं लगभग

देश में चिरौंजी का उत्पादन

चिरौंजी का पेड़

पत्ते तथा छाल

चिरौंजी के फूल

सभी राज्यों में बहुत अधिक हैं। चिरौंजी एक सदाबहार वृक्ष है। इसकी ऊँचाई 15 से 25 फीट के आसपास होती है। इसकी छाल बहुत ही मोटी और खुरदरी(मगरमच्छ की पीठ) जैसी होती है। इसकी पत्तियाँ 15-20 सें.मी. लम्बी एवं गोल आकार में जालीदार सिरे युक्त होती हैं। इसके फल 8-12 मि.मी. के, अंडाकार और गोलाकार होते हैं। इस वृक्ष के फल से प्राप्त गुठली को फोड़कर चिरौंजी निकाली जाती है।

फायदे और उपयोग

चिरौंजी में प्रचुर मात्रा में प्रोटीन पाया जाता है। इसके सेवन से शरीर में प्रोटीन की कमी पूरी की जा सकती है। इसे मिठाई में, सूखे मेवे के रूप में प्रयोग किया जाता है। शारीरिक कमजोरी के लिए चिरौंजी खाना बहुत फायदेमंद होता है। यह शारीरिक क्षमता का विकास भी करता है। इसे दूध के साथ पकाकर सेवन करने से सर्दी-जुकाम में फायदा होता है। इसका सौंदर्य उत्पाद में इस्तेमाल करने से चेहरे पर चमक आती है और कील-मुहांसे, दाग आदि साफ हो जाते हैं। आयुर्वेद में चिरौंजी का फल मधुर, अम्ल तथा कफ-पित्तशामक माना गया है। इसका तेल पित्तविकारों में हितकारी होता है। चिरौंजी के पेड़ से निकलने वाले गोंद का प्रयोग चर्म

चिरौंजी फल

चिरौंजी गोंद

चिरौंजी दाना

चिरौंजी के व्यावसायिक उत्पाद

*भाकृअनुप-भारतीय प्राकृतिक रॉल एवं गोंद संस्थान, नामकुम, राँची, झारखंड

चिरौंजी के फल बेचती महिला

रोग की औषधि में होता है एवं पेय पदार्थ में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

बागवानी की संभावनाएं

चिरौंजी की बागवानी की विशेषता यह है कि जंगली पौधा होने के कारण इसे पानी की ज्यादा आवश्यकता नहीं होती तथा जानवर भी इसे नहीं खाते हैं। अनुपजाऊ तथा पथरीली जमीन पर भी इसे आसानी से उगाया जा सकता है, साथ ही साथ इसमें कीट-रोग आदि की समस्या नहीं होती। यह पेड़ अधिकांश जंगली क्षेत्रों में मिलता है, लेकिन उपयोगिता के हिसाब से इस पेड़ की बागवानी या खेती करने से कम संसाधनों में भी यह किसान को बहुत अच्छा आर्थिक लाभ दे सकता है। इससे प्राप्त होने वाले उत्पादों की कीमत बाजार में बहुमूल्य है। इसकी खेती बड़े स्तर पर करने से किसान इससे लाभान्वित हो सकते हैं, साथ ही साथ छोटे किसान या जिनके पास जमीन कम है वे इस पेड़ को अपने खेत की मेड़ पर भी लगा सकते हैं। इसके फल से अपनी आय के स्रोत बढ़ा सकते हैं। यह फल किसान की आय वृद्धि करने में एक निर्णायक भूमिका अदा कर सकता है।

चिरौंजी का पौधा

महत्व

चिरौंजी के प्राकृतिक जंगलों का बचाव तथा वनाश्रित लोगों को जागरूक करके इसका संवर्धन किया जा सकता है। विघटित जंगलों को पूर्वावस्था में लाने के लिए वन विभाग को स्थानीय लोगों के साथ मिलकर इसके संरक्षण हेतु कदम उठाने चाहिए। कुछ प्राकृतिक स्थानों को चिन्हित करके वहां पर चिरौंजी के वनों को विकसित किया जा सकता है। जंगल में आदिवासी समुदाय के लोगों तथा किसानों में चिरौंजी के वृक्ष के बारे में जागरूकता बढ़ाने तथा उन्हें प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है, जिससे वे इसके महत्व को समझें और इससे अपनी आजीविका में सुधार ला सकें। चिरौंजी प्रसंस्करण हेतु केंद्र तथा राज्य सरकारों द्वारा मशीनरी मुहैया कराई जा सकती हैं, जिससे इसके प्रसंस्करण में आसानी हो सके और इसके मूल्यवर्धित उत्पादों में वृद्धि हो सके। किसानों द्वारा एकत्रित बीजों तथा चिरौंजी की खरीद के लिए उपयुक्त बाजार एवं न्यूनतम समर्थन मूल्य तय किया जा सकता है।

इसकी बागवानी करने से पहले, बेहतर अंकुरण पाने के लिए, इसके बीज को एक कठोर खोल से सावधानी से निकाला जाता है। बीज को लगाने से पहले 24-48 घन्टे तक पानी में रखा जाता है। ऐसे रखने से इसकी अंकुरण क्षमता अधिक हो जाती है। बागवानी के लिए चिरौंजी के पौधे को 5-8 मीटर की दूरी पर लगाया जा सकता है। पौधे लगाने से पहले गड्ढे में 10 किलोग्राम गोबर की खाद, 300 ग्राम फॉस्फोरस और 200 ग्राम पोटाश डाल सकते हैं। इसके फूल दिसम्बर-मार्च के समय में आते हैं, फूल आने से पहले 15-20 किलो गोबर की खाद पेड़ के लिए लाभकारी है। चिरौंजी के पौधे खरीफ के मौसम में लगाए जाते हैं तथा सूखे क्षेत्रों में तेज गर्मी में, इसमें सिचाई की आवश्यकता हो सकती है।

फल कटाई का समय

चिरौंजी के बीज को परिपक्व होने में 4-5 महीने लगते हैं। इसके फूल आने का समय फरवरी के पहले सप्ताह से तीसरे सप्ताह तक होता है। चिरौंजी के फल की तुड़ाई अप्रैल-मई में की जाती है। फल पकने के समय में इनका रंग हरे से बैंगनी में बदल जाता है। पके हुए फल मीठे और स्वादिष्ट होते हैं, जिन्हें खाया जाता है। तुड़ाई से प्राप्त

चिरौंजी पेड़ के साथ स्थानीय लोग

चिरौंजी फलों को एक रात के लिए साधारण पानी में भिगोया जाता है और उसके बाद ये धोकर दो-तीन दिन तक धूप में सुखाए जाते हैं। सूखी हुई गुठली से चिरौंजी दाने निकालने के लिए प्रायः पारंपरिक विधि का प्रयोग किया जाता है। इसकी गुठली को ओखली में कूटकर दाने को निकाला जाता है। उन्नत विधि के लिए आधुनिक उपकरणों का विकास किया गया है, जिससे बड़े पैमाने पर प्रसंस्करण करके कम समय में ज्यादा उत्पाद प्राप्त किया जा सके।

चिरौंजीयुक्त व्यंजन

चिरौंजी की खेती से संभावित आमदनी

बागवानी के लिए, 5x5 मीटर की घनता से एक एकड़ में 160 पेड़ लगाए जा सकते हैं। इसमें एक पेड़ से करीब 20 किलोग्राम चिरौंजी गुठली प्राप्त की जा सकती है। इन गुठलियों को 80रु प्रति किलो बेचने पर, जो कि इसका वर्तमान मूल्य है, प्रति एकड़ 2,56,000रु तक की आय प्राप्त की जा सकती है। यदि प्रसंस्करण करके गुठली में से दाना निकाला जाए तो एक पेड़ से 4 किलो चिरौंजी दाने प्राप्त किये जा सकते हैं, जिसको 800रु/किलो के अनुसार बेचने पर, एक एकड़ में 160 पेड़ पर लगभग 5,12,000रु/प्रति एकड़ तक आमदनी प्राप्त की जा सकती है। ■

मृदा में पोषक तत्वों को बढ़ाते जैविक पलवार

शिवानी रंजन* और **सुमित सौ***

वैश्वीकरण और स्वास्थ्य जागरूकता की वर्तमान स्थिति में फसलों की मांग दुनियाभर में बढ़ी है। फसलों की बाजार में प्रतिस्पर्धा और बढ़ती मांग के कारण किसानों को अंतर्राष्ट्रीय बाजार में बने रहने के लिए अधिक एवं उच्च गुणवत्ता वाली फसलों का उत्पादन करने की आवश्यकता है। अनाज और बागवानी उत्पादकों को उत्पादन की अच्छी गुणवत्ता के साथ उत्पादन बढ़ाने में जैविक पलवार एक अहम भूमिका निभाती है। पानी की कमी और जलवायु परिवर्तन के कारण पैदा होने वाली चुनौतियों को देखते हुए, भारतीय किसानों द्वारा बड़े पैमाने पर जैविक पलवार को अपनाने से कई समस्याओं को दूर करने में मदद मिलेगी। कई अध्ययनों से पता चला है कि जैविक पलवार मिट्टी के पोषक तत्वों को बढ़ाती है, मिट्टी के इष्टतम तापमान को बनाए रखती है, मिट्टी की सतह से वाष्पीकरण की दर, खरपतवार की वृद्धि और मिट्टी के कटाव को भी रोकती है। यह मृदा स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में भी मदद करती है। जैविक पलवार सस्ते पदार्थ हैं। इसलिए पलवार की लागत भी किफायती है।

किसान फसल की पैदावार बढ़ाने के लिए उर्वरकों और कीटनाशकों की अधिक खुराक का उपयोग करते हैं, लेकिन उर्वरकों और अन्य रसायनों की अधिक खुराक हमारी मृदा के स्वास्थ्य के लिए खतरनाक है। इसके अलावा, अत्यधिक सिंचाई के पानी के उपयोग से मृदा के क्षरण और लवणता आदि समस्याएँ हो रही हैं। विशेष रूप से विकासशील देशों में औद्योगिक और घरेलू क्षेत्रों की बढ़ती माँग के कारण कृषि उपयोग के लिए पानी की उपलब्धता दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही है। पलवार को मृदा की सतह पर कवर के रूप में किसी भी सामग्री के रूप में परिभाषित किया जाता है। छाल, भूसे, घास की कतरनों और पत्ती के मलबे जैसे जैविक पलवार अन्य उद्योगों के एक द्वि-उत्पाद होते हैं और समय के साथ आसानी से विघटित हो जाते हैं।

*सब्जी सस्य विज्ञान विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर-813210

जैविक पलवार के लाभ

- मिट्टी की नमी बरकरार रखने में सहायक
- मिट्टी के तापमान का संचालन
- अपवाह नुकसान को कम करना
- अंकुरण प्रतिशत बढ़ाना
- मृदा संरचना में सुधार
- खरपतवार की रोकथाम और नियंत्रण में अहम भूमिका
- उतार-चढ़ाव और अत्यधिक तापमान से जड़ों की रक्षा
- मिट्टी के कटाव को नियंत्रित करने में मदद

जैविक पलवार के विभिन्न प्रकार

छाल

ये अच्छे पलवार पदार्थ होते हैं क्योंकि ये लंबे समय तक इस्तेमाल हो सकते हैं। लकड़ी की छाल में अधिक पानी रखने की क्षमता होती है। यदि बारिश बहुत अधिक है तो छाल अतिरिक्त पानी को अवशोषित कर लेगी और जल जमाव को कम कर देगी। जब बहुत कम बारिश होती है, तो लकड़ी के चिप्स उस पानी को छोड़ देंगे जो वे भीतर समाहित किये हुए हैं। इस प्रकार ये पौधों को सूखे के समय में भी पानी प्रदान करते हैं।

पत्तियों से पलवार

पेड़ से गिरी हुई पत्तियों को खाद बनाकर पलवार के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। पत्तियों की पलवार का इस्तेमाल सभी क्यारियों में कर सकते हैं। पत्तियां मिट्टी के लिए फायदेमंद होती हैं, ये पलवार के रूप में मिट्टी में पोषक तत्वों का योगदान करती हैं। इसका व्यापक रूप से प्राकृतिक वन क्षेत्रों में उपयोग किया जाता है, जहां पेड़ बहुतायत से होते हैं। सूखी पत्तियों के उड़ने को रोकने के लिए, सूखे पत्तों के गुच्छे के ऊपर छोटी शाखाएँ और लकड़ी की छालें रखी जाती हैं। सूखी पत्तियों से बनी पलवार की मोटाई लगभग 3-4 इंच होती है।

घास की कतरनें

घास की कतरनों को सब्जी और बारहमासी क्यारी पर पतली परतों में फैलाया जा सकता है और मौसम के अंत में बदल दिया जा सकता है। अतिरिक्त परतों को जोड़ने से पहले प्रत्येक परत को सूखने देना चाहिए। घास की कतरन भारतीय कृषि में सबसे आसानी से और प्रचुर मात्रा में उपलब्ध पलवार

जैविक पलवार से फसलों की बढ़वार

सामग्री में से एक है। यदि खेत में ताजी घास की कतरनों का उपयोग किया जाता है, तो यह आसानी से विघटित हो जाती है और मिट्टी में नाइट्रोजन का प्रतिशत बढ़ा देती है। विभिन्न प्रकार की घास की कतरनें व्यापक रूप से उपलब्ध हैं जैसे कि हरी या ताजी और सूखी घास। आमतौर पर, हरी घास की कतरनों का उपयोग बारिश के मौसम में नहीं किया जाता है क्योंकि ये स्वयं की जड़ों का विकास कर सकती हैं जो फसल की वृद्धि के लिए हानिकारक होगा।

भूसा और पुआल

धान और गेहूं के भूसे तथा अन्य फसल अवशेष नमी संरक्षण के लिए मिट्टी की सतह पर पलवार के रूप में इस्तेमाल की जाने वाली सबसे आम सामग्रियां है। यद्यपि पुआल पोषक मूल्य में समृद्ध नहीं है, लेकिन सड़न के बाद, यह मिट्टी को अधिक उपजाऊ बनाता है। पुआल मिट्टी की वाष्पीकरण दर को कम करता है। पुआल पलवार के लिए एक आदर्श है क्योंकि यह आसानी से खेत में इस्तेमाल की जा सकता है। पुआल से बनी पलवार की मोटाई लगभग 6 से 8 इंच होती है।

पलवार का उचित समय एवं तरीका

बारिश के मौसम की शुरुआत में, मिट्टी नम होती है और अक्सर गर्म होती है, जिससे मिट्टी से वाष्पीकरण होता है। यदि हम पलवार लगाते हैं तो मिट्टी ठीक से सांस नहीं ले पाती है, और भाप नहीं निकल पाती है, इससे कई तरह के कीट, पतंगे और रोगों की आशंका बढ़ सकती है। किसी भी प्रकार की रोग होने के जोखिम को कम करने के लिए मिट्टी और पलवार को संतुलित करने के लिए, बारिश के मौसम की शुरुआत से पहले 2-3 महीने तक इसमें उचित मात्रा में पानी डालना चाहिए। इसके अलावा, पलवार का सबसे अच्छा समय बारिश के मौसम के अंत में है। अब मृदा में भाप निकल गई है लेकिन फिर भी मृदा में नमी उपलब्ध होती है, जो मृदा में पलवार को अपघटन करने में सहायता करेगी। जैविक पलवार से पहले खेत से खरपतवार निकाल दें और सुनिश्चित करें कि चयनित पलवार किसी भी खरपतवार के बीज से मुक्त है। ऐसी पलवार सामग्री से बचें जो कीटनाशक या बीमारी से दूषित होती हैं। यदि हम इन सामग्रियों का प्रयोग करते हैं, तो वे फसल पर कीट के हमले की आशंका बढ़ा सकते हैं।

जैविक पदार्थों के साथ पलवार मृदा के पोषक तत्वों को बढ़ाती है और मृदा के इष्टतम तापमान को बनाए रखती है। यह मृदा की सतह से वाष्पीकरण, खरपतवार की वृद्धि और मृदा अपरदन को रोकती है। यह भौतिक, रासायनिक और जैविक जैसे मृदा के सभी गुणों में सुधार करती है। मृदा में जैविक पलवार आसानी से विघटित होते हैं। ये केंचुआ और मृदा के सूक्ष्मजीवों की वृद्धि के लिए फायदेमंद होते हैं। जैविक पलवार के लाभकारी गुण हैं जैसे कि यह पर्यावरण के प्रति अनुकूल है। यह मृदा की नमी को बनाए रख सकती है और पानी के उपयोग की क्षमता को बढ़ाती है। इसके साथ ही इससे उपज में 50 प्रतिशत से अधिक वृद्धि होती है। ■

भाकृअनुप की मासिक लोकप्रिय पत्रिका
'खेती' पत्रिका के नवंबर, 2022 अंक के मुख्य आकर्षण

- आधुनिक तकनीक से सूरजमुखी की खेती
- अलसी का उत्पादन
- गेहूं के भूसे से इको-प्लास्टिक
- आधुनिक कृषि से रोजगार अवसर
- अजोला से पादप उपचार
- सर्दी में पाला प्रबंधन
- अवशेष से बनाएं कम्पोस्ट
- कार्प मत्स्यपालन में परिपूरक आहार जरूरी
- सूचना और संचार प्रौद्योगिकी का कृषि में योगदान
- चारा खरपतवारों से पशुओं का बचाव
- अच्छे बीजोत्पादन से भरपूर फसल
- डेरी फार्म में रिकॉर्ड रखने का महत्व
- धान की प्रमुख फसल स्थापन विधियां
- बरसीम की फसल का प्रबंधन

संपर्क सूत्र: प्रभारी, व्यवसाय एकक, भाकृअनुप-कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, कैब-1, पूसा गेट, नई दिल्ली-110012
दूरभाष: 25843657, www.icar.org.in

हस्त परागण बढ़ाए शरीफे की उपज

निर्मल कुमार मीना*, लाधुराम*, सुमन चौधरी**, भगवती** और रूपा**

शरीफा इक्कीसवीं शताब्दी के "सुपर फल" के रूप में जाना जाता है। यह औषधीय एवं पोषक गुणों से भरपूर स्वादिष्ट एवं अच्छी आय देने वाला फल है। प्राकृतिक परागण द्वारा इसमें संतोषजनक उपज प्राप्त नहीं होती है। पुमंग एवं जायांग के परिपक्व काल में भिन्नता एक प्रमुख बाधा है। हस्त परागण उपज एवं गुणवत्ता बढ़ाने की बहुत सरल एवं प्रभावी तकनीक है। इससे न केवल उपज बल्कि फल के जैव रासायनिक गुणों एवं निधानी आयु में भी वृद्धि होती है। उत्तरी भारत में जुलाई के माह *अर्का सहन* किस्म में प्रातः छह बजे से नौ बजे तक *बालानगर* या *रायदुर्ग* किस्म के परागकणों द्वारा पेंटब्रश की सहायता से हस्त परागण करने पर प्राकृतिक परागण की तुलना में छह से आठ गुना तक उपज में वृद्धि देखी जा सकती है।

उपोष्ण एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में शरीफा एक उभरती हुई फल फसल है। शरीफा बहुत सी स्थानीय भाषाओं में अलग-अलग नामों यथा सीताफल, स्वीट सोप, शुगरसेब, अनोना आदि से भी जाना जाता है। शरीफे की खेती व्यावसायिक स्तर पर महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, गुजरात, कर्नाटक एवं राजस्थान प्रदेशों में की जाती है। वर्तमान में शरीफा 44000 हैक्टर क्षेत्रफल पर उगाया जाता है। शरीफा पोषक तत्वों से भरपूर एवं औषधीय गुणों वाला फल है। इसके गूदे में 26-32 डिग्री ब्रिक्स कुल घुलनशील पदार्थ, 0.20 प्रतिशत से भी कम अम्लता और 18-25 प्रतिशत शर्करा पायी जाती है। इसके अलावा इसमें फेनोल्स, एंटीऑक्सीडेंट, विटामिन्स एवं खनिज तत्व पाए जाते हैं। इसके गूदे से नैक्टर, आईसक्रीम, चॉकलेट, वासुन्दी, चिप्स इत्यादि प्रसंस्करित उत्पाद बनाये जाते हैं जिनकी बाजार में काफी लोकप्रियता है।

शरीफा मध्यम आकार का 1 से 3 मीटर ऊँचाई का पौधा होता है। पुष्प क्रीमी सफेद रंग के होते हैं। पुष्पण का समय अप्रैल से लेकर जुलाई तक मौसम, जगह एवं किस्म पर निर्भर करता है। फल सितम्बर से अक्टूबर तक बाजार में रहते हैं। इसकी प्रमुख किस्में *बालानगर, अर्का सहन, फुले जानकी, फुले पुरंदर* इत्यादि हैं। इसके फूलों में नर व मादा भागों में परिपक्वन काल में भिन्नता देखने

हस्त परागण है उपज वृद्धिकारक

*वैज्ञानिक, अखिल भारतीय शुष्क क्षेत्र फल समन्वित अनुसन्धान परियोजना; **फल विज्ञान विभाग, उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, झालावाड़ (राजस्थान)

हस्त परागण का महत्व

हस्त परागण से कृत्रिम रूप से परागकणों को हाथ से फूलों के स्टिग्मा तक पहुँचाया जाता है। इस विधि के लिए ऐसे फूल उपयुक्त हैं जो स्वपरागित होने में असमर्थ होते हैं या फलन में आनुवंशिक कारणों द्वारा समस्या आ जाती है। हस्त परागण की प्रक्रिया फलों की संख्या एवं उपज बढ़ाने के साथ-साथ ही उनकी गुणवत्ता एवं निधानी आयु को भी बढ़ाती है। यह अत्यंत आवश्यक प्रक्रिया है जो निम्नलिखित लाभ प्रदान करती है-

- कुछ विशिष्ट गुणों वाली किस्में जैसे *अर्का सहन* एवं *अटेमोया*, जिनमें प्राकृतिक परागण न के बराबर होता है, से बिना हस्त परागण के फल प्राप्त करना संभव नहीं है।
- हस्त परागण प्रक्रिया से उत्पादन एवं उत्पादकता में बढ़ोतरी होती है।
- फलों का आकार, ज्यामिति एवं उनका भार बढ़ाने में सक्षम है एवं उच्च गुणवत्ता वाले फलों के उत्पादन में सहायक है।
- फलों में भौतिक सुधार के साथ-साथ उनके जैव रासायनिक गुणों एवं भण्डारण क्षमता में वृद्धि करती है।
- फलों के परागण हेतु विशिष्ट किस्में, जो परागकण हेतु सहायक सिद्ध हो सकती हैं, के चयन में हस्त परागण महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

अत: फलोत्पादक को हस्त परागण के माध्यम से उच्च कोटि के फल एवं आमदनी प्राप्त हो सकती है।

को मिलती है जिसे 'डायिकोगेमी' कहते हैं। शरीफे के मामले में प्रोटोगायनी (मादा भाग का पहले परिपक्व होना) पाई जाती है। इसके फलस्वरूप परागण प्रक्रिया सफल नहीं हो पाती है और फल नहीं बन पाते हैं। कुछ किस्में जैसे अर्का सहन में यह बहुत गंभीर समस्या है।

परागण

हस्त परागण की प्रक्रिया

हस्त परागण की प्रक्रिया पुष्पण के समय, जायांग की ग्राह्यता, मौसम एवं समय पर निर्भर करती है। राजस्थान, गुजरात एवं उत्तरी राज्यों में यह जुलाई के माह में की जानी चाहिए क्योंकि यहाँ मुख्य पुष्पण का समय जुलाई माह होता है। हस्त परागण हेतु निम्नलिखित सामग्रियां चाहिए-

- परागकण
- प्लास्टिक कप
- पेंट ब्रश नंबर 1
- टैग

परागकणों का एकत्रण एवं फूल का चयन

परागकणों को एकत्र करते समय यह ध्यान रहे कि जिस किस्म के फूलों से परागकण एकत्र कर रहे हैं, वो सजीव एवं सक्रिय होने चाहिए। *बालानगर, रायदुर्ग, फुले जानकी* आदि किस्में इसके लिए ठीक हैं। परागकण संग्रह पूर्ण रूप से खिले हुए परिपक्व फूल से ही करना चाहिए। संभव हो सके तो परागकणों का एकत्रीकरण एक दिन से अधिक पहले नहीं करना चाहिए अन्यथा उनमे भूरापन एवं शुष्कन आ जाता है जिससे सफलता के अवसर कम हो जाते हैं। परागण प्रक्रिया करने से ठीक पहले परागकण एकत्र करना अति उत्तम रहता है।

सारणी 1: हस्त परागण और प्राकृतिक परागण की तुलना

गुण	प्राकृतिक परागण	हस्त परागण
फलन (प्रतिशत)	10-12	45-55
उपज (किलोग्राम /पौधा)	1-2	16-20
फल भार (ग्रा.)	70-90	350-390
कुल घुलनशील ठोस (डिग्री ब्रिक्स)	25-28	30-32
शर्करा (प्रतिशत/100 ग्रा)	15-20	18-25

एकत्रीकरण के बाद, परागण हेतु फूल का चयन करना बहुत महत्वपूर्ण होता है और इसी बात पर इसकी सफलता निर्भर करती है। पूर्ण विकसित फूल, जो खुलने वाला हो, का चयन सर्वोत्तम रहता है क्योंकि उसमें जायांग की गाह्यता सबसे अधिक होती है। फूल के दलपुंज खोलकर भी उसकी गाह्यता को परखा जा सकता है। यदि जायांग भाग चिपचिपा हो तो वह परागकण छिड़कने के लिए आदर्श है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया का समय प्रात: 6 बजे से लेकर 9 बजे तक रहता है।

परागण प्रक्रिया अपनाना

परागकणों से भरे हुए प्लास्टिक कप को अपनी शर्ट की ऊपर वाली जेब में रख लें, जिससे परागकण लेने में आसानी रहती है। पेंट ब्रश की सहायता से परागकण ब्रश पर चिपका लें और चयनित फूल में धीरे से छिड़क दें। इस प्रक्रिया को पुष्पण के समय हर रोज दोहराना पड़ेगा क्योंकि सभी फूलों के खुलने का समय अलग-अलग होता है। इसके बाद उसमे टैग लगा दें जिससे यह पता

अर्का सहन

चल सके कि यह हस्तपरागित है। परागण के 2-4 दिन तक लगातार निरीक्षण करते रहें। यदि फूल सफल रूप से परागित हो चुका है तो उसके दलपुंज सूखने लग जाते हैं और अंडाशय फूलकर मटर के दाने जैसे छोटे फलकलिका में परिवर्तित हो जाता है। एक कुशल व्यक्ति एक घंटे में लगभग 100 से 120 फूलों को परागित कर सकता है।

हस्त परागण द्वारा विकसित फल

यह बहुत ही सरल एवं प्रभावी विधि है जिससे उत्पादन एवं उत्पादकता के साथ-साथ फलों की गुणवत्ता में सुधार किया जा सकता है। शरीफे की किस्म *अर्का सहन* में हस्त परागण एवं प्राकृतिक परागण का तुलनात्मक अध्ययन सारणी 1 में दिया है ■

गुग्गल की उन्नत खेती

देवी लाल धाकड़*, शिवम मौर्य, रायपाटिकार्तिक***, कुलदीप सिंह****** और **आदित्य चौधरी*******

औषधीय एवं सगंधीय पौधे मानव सभ्यता से जुड़े रहे हैं और भविष्य के लिए मूल्यवान धरोहर हैं। अनेक कारणों से इन पौधों को वर्तमान में उपयोग करते हुए भविष्य के लिए सुरक्षित रखना भी अत्यंत आवश्यक है। भारत के रेड डाटा बुक में 427 संकटग्रस्त पौधों के नाम दर्ज हैं। समय रहते इन औषधीय महत्व का संरक्षण करना जरूरी है अन्यथा भविष्य में इनका अस्तिव भी समाप्त हो सकता है। इतना ही नहीं इस कारणवश आने वाले समय में इनका लाभ नहीं मिल सकेगा। ऐसे ही एक पौधे गुग्गल के बारे में यहां संरक्षित जानकारी देने का प्रयास किया जा रहा है।

भारत में गुग्गल प्राकृतिक रूप से ज्यादातर शुष्क क्षेत्रों में पाया जाता है। अरब, अफ्रीका-बलूचिस्तान एवं भारतवर्ष इसके मुख्य उत्पत्ति स्थान हैं। भारतवर्ष में यह देशज पौधा है तथा गुजरात, राजस्थान, मध्य प्रदेश एवं कर्नाटक में भी यह पाया जाता है। यहां इसकी कई प्रजातियां उपलब्ध हैं। मुख्य रूप से *कॉमीफोरा विग्टी* और सी *स्टॉकसियाना* राजस्थान एवं गुजरात के शुष्क क्षेत्रों में पाये जाती हैं तथा *सी. बेरयी, सी. एगेलोचा, सी. मि. सी. कॉर्डेटा* और सी. *जमेरमानी नामक* प्रजातियों के वितरण का प्रमाण भारत के अन्य राज्यों में भी मिलता है। राजस्थान की यह मुख्य वन औषधि है। अरावली की विभिन्न शाखाओं, तलहटी में विशेष रूप से यह पाया जाता है।

*एवं****सस्य विज्ञान विभाग; **एवं*****पादप रोग विज्ञान विभाग, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर, जयपुर, राजस्थान; ***सस्य विज्ञान विभाग,प्रोफेसर जयशंकर तेलंगाना राज्य कृषि विश्वविद्यालय, राजेंद्र नगर, हैदराबाद

वानस्पतिक विवरण

गुग्गल का वानस्पतिक नाम *कॉमीफोरा विग्टी* है तथा यह बरसरेसी परिवार का एक सदस्य है। यह एक से तीन मीटर ऊँचा, झाड़ीनुमा पौधा है। इसकी शाखाएं कंटीली होती हैं। सर्दियों में इसके सभी पत्ते झड़ जाते हैं। इसके फल मांसल डूपा, लंबे गोल, छोटे बेर के समान होते हैं। इसके तने की बाहरी छाल से खुरदरी पपड़ियां निकलती हैं। इसके तने व शाखाओं से जो गोंद निकलता है, वही गुग्गुल (गुग्गल) कहलाता है। असली गुग्गल का रंग नवीन हालत में पीला और पुराना पड़ने पर काला हो जाता है।

औषधीय गुण

गुग्गल एक बहुपयोगी पौधा है, जिससे निकलने वाले गोंद का इस्तेमाल एलोपैथी, यूनानी तथा आयुर्वेदिक दवाओं में किया जाता है। इसके गोंद के रासायनिक तथा क्रियाकारक तत्व, संधिवात, मोटापा दूर करने, तांत्रिकीय असंतुलन, रक्त में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा एवं कुछ अन्य व्याधियों के उपचार में अत्यधिक प्रभावकारी पाये गये हैं। गुग्गल का धुंआ क्षय रोग में भी हितकारी पाया गया है। विश्लेषणों से पता चला है कि इनमें स्टेरॉयड वर्ग के दो महत्वपूर्ण यौगिक, जेड-गुग्गलस्टेरोन तथा ई-गुग्गलस्टेरोन पाये जाते हैं।

जलवायु

गुग्गल एक उष्ण कटिबंधीय पौधा है। गर्म तथा शुष्क जलवायु इसके लिए उत्तम पायी गयी है। सर्दियों के मौसम में जब तापमान कम हो जाता है तो पौधा सुषुप्तावस्था में पहुंच जाता है और इसकी वानस्पतिक वृद्धि कम हो जाती है। प्राकृतिक रूप में यह पहाड़ी एवं ढालू भूमि में उगता है। उन क्षेत्रों में, जहां वार्षिक वर्षा 10 से 90 सें. मी. तक होती है तथा पानी का जमाव नहीं होता है, इसकी बढ़वार अच्छी पायी गयी है। इसमें 40 से 45 डिग्री सेल्सियस की गर्मी से 3 डिग्री सेल्सियस तक की ठंड सहन करने की क्षमता होती है।

गुग्गल की शाखाएं और फल

भूमि का चयन

यह समस्याग्रस्त भूमि जैसे लवणीय एवं सूखी भूमि में सुगमता से उगाया जा सकता है। दोमट व बलुई दोमट भूमि, जिसका पी.एच मान 7.5-9.0 के बीच हो, इसकी खेती के लिए उपयुक्त पायी गयी है। इसे समुचित जल निकास वाली काली मृदा में भी सुगमतापूर्वक उगाया जा सकता है।

प्रजातियां

इसमें प्रजातियों के विकास पर ज्यादा कार्य नहीं हुआ है, लेकिन हाल ही में *मरूसुधा* नामक किस्म को केन्द्रीय औषधीय एवं सगंधीय संस्थान, लखनऊ ने विकसित किया है, जो गुग्गल गोंद की अधिक पैदावार देती है।

प्रवर्धन

इसका प्रवर्धन बीज तथा वानस्पतिक, दोनों विधियों से किया जा सकता है। बीज द्वारा उगाये गये पौधों की बढ़वार कम होती है और उसमें विविधता पाई जाती है। इसलिए वानस्पतिक प्रवर्धन को प्रोत्साहित किया जाता है। प्राकृतिक रूप से बीज द्वारा ही प्रवर्धन होता है तथा जुलाई से सितम्बर के दौरान फलित बीजों का अंकुरण अच्छा पाया जाता है।

वानस्पतिक प्रवर्धन के लिए कटिंग, लेयरिंग (गूटी) तथा वीनियर ग्रफ्टिंग की जा सकती है। कटिंग को स्वस्थ पौधों से मई से जुलाई के बीच लेना चाहिए। मुख्यत: 20 से 25 सें.मी. लंबी तथा 1.0 से 1.5 सें.मी. व्यास वाली कटिंग द्वारा पौधे सुगमतापूर्वक तैयार किये जा सकते हैं।

गुग्गल वृक्ष

पौधों की रोपाई

सामान्यत: पौधों को 3×3 मीटर की दूरी पर लगाने के लिए 30×30×30 सें.मी. के गड्ढे तैयार कर लेने चाहिए और 3 से 5 कि. ग्रा. पूर्ण रूप से सड़ी हुई गोबर की खाद को मिट्टी के साथ मिलाकर 5 सें.मी. की ऊंचाई तक गड्ढों में भर देना चाहिए। यह प्रक्रिया 15 जून से पहले पूर्ण कर लेनी चाहिए। वर्षा होने के पश्चात जुलाई के महीने में पौधे की रोपाई करनी चाहिए।

पौधों की देखभाल

पौधे लगाने के प्रथम वर्ष में ज्यादा देखभाल की आवश्यकता पड़ती है। पौधों के आसपास की घास को नियमित रूप से निकालते रहना चाहिए और आवश्यकतानुसार एक या दो सिंचाई करनी चाहिए। पौधों का इस प्रकार से कर्तन करें कि एक से दो शाखाएं ऊपर की तरफ बढ़ें और अन्य छोटी शाखाओं को काट लेना चाहिए जिससे इनका उचित विकास होता है। प्रति वर्ष अक्टूबर-नवम्बर में पंक्तियों के बीच के खरपतवार को निकालते रहना चाहिए।

कटुआ कीट का नियंत्रण

कटुआ कीट एक बहुमुखी कीट है। इसकी सूंडियां दिन में मृदा के अंदर रहती हैं तथा रात्रि में गुग्गल पौधों के तनों, शाखाओं तथा मृदा के अंदर के कंदों को क्षति पहुंचाती हैं। अत: इस कीट के नियंत्रण के लिये समेकित कीट प्रबंधन को अपनाना आवश्यक है।

समेकित कीट प्रबंधन के तरीके

समेकित कीट प्रबंधन में निम्न तरीकों को अपनाकर इस कीट के प्रकोप को कम किया जा सकता है-

- जैविक कीटनाशी का प्रयोग बी.टी. (*बैसिलस थूरिन्जिएन्सिस*) नामक जैविक कीटनाशी, जो बाजार में डाईपेल, डोल्फिन, बायोलेप, बायोस्प आदि नामों से प्रचलित हैं, का 1.0 कि.ग्रा./हैक्टर (20 ग्राम/नाली) की दर से पौधे की रोपाई के पश्चात छिड़काव करना चाहिए ।
- रासायनिक विधि द्वारा क्लोरपाईरीफॉस नामक कीटनाशी का 2.0 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए। प्रथम छिड़काव पौधे की रोपाई के 2-3 माह तथा द्वितीय छिड़काव एक सप्ताह बाद करना चाहिए।

गोंद निकालना

सामान्यत: 6 से 8 वर्ष पुरानी झाड़ियां, गोंद निकालने हेतु तैयार हो जाती हैं। झाड़ियों के तने पर चीरा दिसम्बर से फरवरी में लगाना चाहिए। जब पौधे का व्यास 7.5 सेंटीमीटर का हो जायें, तब गोंद प्राप्त करने हेतु मुख्य तने एवं शाखाओं पर 1.5 सेंटीमीटर गहरा वृत्ताकार चीरा 30 सेंटीमीटर एवं 60 डिग्री कोण पर समान अन्तराल पर लगाया जाता है। चीरे वाले स्थानों से सफेद पीला सुगंधित गोंद स्रावित होता है जो कि धीरे-धीरे ठोस होने लगता है। गोंद इकट्ठा करते समय सफाई पर विशेष ध्यान रखना चाहिए, जिससे बालू या मिट्टी गोंद के साथ मिश्रित न हो सके। सामान्यत: 6 से 8 साल पुरानी झाड़ियों से औसतन 300 से 400 ग्राम गोंद प्राप्त होता है। ऐसे किसान, जिनकी ऊँची जमीन बेकार बंजर पड़ी हो, वे प्रयोगात्मक तौर पर गुग्गल की खेती कर सकते हैं। प्राप्ति में लगभग छ: वर्ष लगेंगे।

गोंद (गुग्गल)

मिर्च में नाशीजीवों का समेकित प्रबन्धन

राजेंद्र नागर*, दयानंद*, रशीद खान*, आर एस राठोड़* और **विमल नागर***

मिर्च एक नगदी फसल है तथा हमारे भोजन का प्रमुख अंग है। स्वास्थ्य की दृष्टि से मिर्च में विटामिन 'ए' व 'सी' पाये जाते हैं। इसमें कुछ खनिज लवण भी होते हैं। भारत, मिर्च का दुनिया का सबसे बड़ा उत्पादक, उपभोक्ता और निर्यातक है। देश में आंध्र प्रदेश में गुंटूर कुल मिर्च का 30% उत्पादन करता है। भारत मिर्च का 75% निर्यात करता है। 20 से अधिक कीटों की प्रजातियां मिर्च के पत्तों और फलों पर हमला करती हैं। थ्रिप्स और माइट्स के गंभीर संक्रमण से पौधों की मृत्यु भी हो जाती है जिससे फसल की उपज प्रभावित होती है।

राजस्थान में मिर्च की खेती जोधपुर, पाली, सवाईमाधोपुर, सीकर, अजमेर एवं भीलवाड़ा जिलों में अधिक की जाती है। यह किसानों की आय बढ़ाने के लिए महत्वपूर्ण फसल है।

मिर्च की फसल पर विभिन्न प्रकार के नाशीकीटों एवं रोगों का प्रकोप होता है जिसससे फसल उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

प्रमुख कीट

1. फल बेधक : हेलीकोवर्पा आर्मीजेरा (लेपिडोप्टेरा : नोक्टुइडी)

इस कीट की विकसित सूण्डी हरे रंग की होती है तथा दोनों किनारों पर हल्की पीली छोटी-छोटी धारियाँ होती हैं। इस कीट की सूण्डी (लार्वा) फलों के अन्दर छेद करके फल के अन्दर के भाग को खाती हैं। यह सूण्डी कोमल शाखाओं, पत्तियों तथा फूलों को भी खाती है। इसके जीवन में 4 अवस्थाएँ होती हैं- अण्डा, सूण्डी, प्यूपा एवं पतंगा (प्रौढ़)। यह फल में छेद करके शरीर का आधा भाग अन्दर घुसाकर फल का गूदा खाती है, जिसके कारण फल खाने योग्य नहीं रहता है और सड़ जाता है।

सूंडी ग्रसित मिर्च

2. चेंपा/मोयला (एफिड) : एफिस स्पीसीज (हेमीप्टेरा : ऐफिडिडी)

इस कीट के शिशु व वयस्क दोनों

चेंपा/मोयला ग्रसित पत्ती

पौधों के मुलायम हिस्सों एवं पत्तियों की निचली सतहों से रस चूसकर पौधों को कमजोर कर देते हैं। कीट पत्तियों पर शहद जैसा चिपचिपा पदार्थ भी छोड़ते हैं जो मक्खियों एवं चींटियों को आकर्षित करते हैं। इसके कारण पौधों में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया मंद पड़ जाती है व पौधों की बढ़वार रुक जाती है। यह कीट एक वर्ष में 12-14 पीढ़ियाँ पैदा करता है। चेंपा फसलों में विषाणु रोग भी फैलाता है।

सफेद मक्खी : *बेमिसिया टैबेकि* (हेमीप्टेरा: एलेयरोडिडी)

इस कीट के अण्डाकार शिशु पत्तियों पर चिपके रहते हैं। प्रौढ़ का रंग सफेद से हल्का पीलापन लिए होता है। शिशु एवं प्रौढ़ पत्तियों की निचली सतह से रस चूसते हैं जिससे पत्तियाँ मुड़कर सूखने लगती हैं। ये शहद जैसे चिपचिपे पदार्थ का स्राव भी करते हैं जिससे पौधों में भोजन बनाने की क्षमता कम हो जाती है। यह कीट पत्ती मोड़क रोग को फैलाते हैं।

सफेद मक्खी ग्रसित पत्तियाँ

थ्रिप्स (पर्णजीवी) : *थ्रिप्स टैबेकी* (थाइसेनोप्टेरा : थ्रिपिडी)

ये कीट छोटे, पतले एवं हल्के भूरे रंग के रेंगते हुए पत्तियों की निचली सतह पर पाये जाते हैं। इनका प्रकोप/आक्रमण प्ररोह, फूलों एवं पत्तियों पर शुष्क मौसम में अधिक होता है, जिससे ग्रसित पौधों के भागों की संरचना बिगड़ जाती है व पत्तियाँ ऊपर की ओर मुड़ जाती हैं तथा पौधे छोटे रह जाते हैं।

थ्रिप्स (पर्णजीवी) : ग्रसित पत्तियाँ

लाल मकड़ी (रेड स्पाइडर माइट): *टेट्रानिकस अर्टिकी* : टेट्रानिचिडी

यह आठ पैरों वाला छोटा, लाल, पीला जीव होता है जो पत्तियों की निचली सतह पर रहकर रस चूसता है। इससे पत्तियाँ लाल भूरी दिखाई देती हैं। पत्तियाँ धीरे-धीरे मुड़कर, झुर्रीदार एवं अंत में टूटकर गिर जाती हैं।

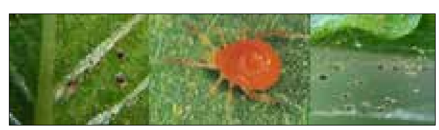

लाल मकड़ी ग्रसित पत्तियाँ

प्रमुख रोग

श्यामव्रण/ फल सड़न/ शीर्ष मरण (डाईबैक) : (रोग कारक : कोलेटोट्राइकम कैप्सिकि)

इस रोग से ग्रसित पौधों की टहनियाँ ऊपरी सिरे से नीचे की तरफ सूखने लगती हैं तथा फूल एवं फल सड़ने के साथ-साथ

*कृषि विज्ञान केंद्र, आबूसर, झुन्झुनूं (राजस्थान)

श्यामव्रण/फल सड़न/शीर्ष मरण (अ. ग्रसित पौधा, ब. ग्रसित फल एवं स. ग्रसित पौधा)

सूख कर झड़ने लगते हैं। पत्तियों व फलों पर गोल-गोल सिकुड़े हुए गहरे भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं जिनके ऊपर छोटे काले बिन्दु अधिक संख्या में दिखाई देते हैं। रोग की उग्र अवस्था में ऊपरी एवं बाहरी शाखाओं के साथ पूरा पौधा सूख जाता है।

पत्ती मोड़क रोगग्रसित पौधे

पत्ती मोड़क (लीफकर्ल) :- (रोग कारक: *टोबेको लीफ कर्ल वायरस*)

यह विषाणु (वायरस) जनित रोग, सफेद मक्खी द्वारा मिर्च में फैलता है। इस रोग से प्रभावित पौधों की पत्तियाँ ऊपर की तरफ मुड़कर गुच्छे का रूप ले लेती हैं। ग्रसित पौधों में बहुत कम मात्रा में फूल एवं फल लगते हैं। पौधों का माथा बंधकर झाड़ीनुमा हो जाता है।

पत्ती धब्बा (लीफ स्पॉट): (रोग कारक: *सर्कोस्पोरा कैप्सिकि*)

इस रोग में पत्तियों पर गहरे भूरे रंग के धब्बे बनते हैं, जो आपस में मिलकर बड़े हो जाते हैं एवं पत्तियाँ सूखकर झड़ जाती हैं व फलों के ऊपर धब्बे बनने से फल सड़ने लगते हैं।

पत्ती मोड़क रोगग्रसित पत्तियाँ

आर्द्रगलन/पादगलन (फुट रॉट) :- (रोग कारक : *पिथियम स्पीसीज*)

यह रोग पौधशाला (नर्सरी) में लगता है। इससे पौधा उगने से पहले ही मर जाता है या उगने के बाद पौधे की छोटी अवस्था में जमीन से जुड़े तने वाले हिस्से पर जलासिक्त धब्बे बनने से पौधे गलकर मरने लगते हैं। उग्र अवस्था में यह रोग पौधशाला में एक सिरे से शुरु होकर पौधशाला को पूर्ण रूप से नष्ट कर देता है।

जीवाणु झुलसा : (रोग कारक : *अल्टरनेरिया कैप्सिकी*)

रोग की शुरुआती अवस्था में पत्तियों पर अनियमित आकार के जलासिक्त उभरे हुए धब्बे बनने लगते हैं। बाद में ये भूरे रंग के बाहरी किनारों के साथ पीले दिखाई देने लगते हैं। उग्र अवस्था में पत्तियाँ झुलस कर झड़ने लगती हैं तथा तने व फलों पर बड़े धब्बे बनकर खुरदरे दिखाई देते हैं और फलों को सड़ा देते हैं।

छाछ्या रोगग्रसित पत्तियाँ

छाछ्या रोग (पाउडरी मिल्ड्यू) : (रोग कारक : *ओइडिओप्सिस स्पीसीज*)

पत्तियों पर सफेद पाउडर रूप में धब्बे बनते हैं, इनके उग्र अवस्था में पूरे पौधे पर भूरे-सफेद धब्बे फैलने से पौधा बौना रह जाता है तथा पत्तियाँ व फूल झड़ जाते हैं। फल बहुत कम व छोटे आकार के बनते हैं। ■

नाशीजीव प्रबन्धन

- फसल की कटाई के बाद तुरन्त खेत की गहरी जुताई करें।
- फसल/पौधों के अवशेषों एवं रोगग्रसित पौधों को खेत से निकालकर नष्ट करें।
- फसलचक्र अपनायें।,
- बुआई के लिए स्वस्थ एवं रोगरोधी बीजों का प्रयोग करें।
- खेतों में प्रकाश पाश का उपयोग करें।
- रस चूषक कीटों के नियंत्रण के लिए 2 चिपचिपे पाश (स्टिकी ट्रैप) प्रति एकड़ की दर से एवं नीम अर्क व का 5.0 प्रतिशत छिड़काव पौधा रोपण के 15-20 दिन के अन्तराल पर करें।
- एजाडिरेक्टीन 1500 पी.पी.एम. का 1-2 मिली/लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें।
- तम्बाकू की लट एवं फलछेदक के लिए अलग-अलग फैरोमोन ट्रैप, 5 प्रति हैक्टर की दर से खेत में लगाएं।
- अण्डा परजीवी, ट्राइकोग्रामा प्रजाति के 1,00,000 अंडे प्रति हैक्टर की दर से एक सप्ताह के अन्तराल पर खेत में 4-5 बार छोड़ें।
- एच.ए.एन.पी.वी. का 250-500 एल.ई. प्रति हैक्टर की दर से 2-3 बार छिड़काव करें।
- खेत में चिड़ियों को आकर्षित करने के लिए लकड़ी के टी आकार के डंडे लगाएं।
- फसल को बीज एवं मृदाजनित फफूंदी रोगों से बचाने के लिए पौधे की जड़ों को ट्राइकोडर्मा पाउडर द्वारा बताई गयी विधि से उपचारित कर रोपाई करें।
- आर्द्रगलन के प्रबन्धन हेतु खेत में जल-निकासी की उत्तम व्यवस्था करें तथा बीजों को ट्राइकोडर्मा पाउडर 8-10 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार करें। ट्राइकोडर्मा पाउडर 5 किलोग्राम प्रति 100 किलोग्राम गोबर की खाद में मिलाकर बुआई से पूर्व मिट्टी में मिलाएं।
- छाछ्या रोग के प्रबन्धन हेतु घुलनशील सल्फर चूर्ण 3 ग्राम प्रति लीटर या केराथेन 48 ई.सी. को 2 मिली/लीटर पानी में घोलकर 10-15 दिन के अन्तराल से छिड़काव करें।
- जीवाणु झुलसा रोग के प्रबन्धन हेतु स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 300 मि.ली. ग्राम + कॉपर ऑक्सीक्लोराइड-50 डब्ल्यू. पी. को 4 ग्राम/लीटर की दर से घोलकर 10 दिनों के अन्तराल से 3 छिड़काव करें।

कीवी का व्यावसायिक उत्पादन

सन्नी शर्मा*, विशाल सिंह राणा*, नीरजा राणा, विजय कुमार*** और **उमेश शर्मा*****

कीवी फल को चाइनीज गूजबेरी के नाम से भी जाना जाता है। इसका वानस्पतिक नाम *एक्टिनिडिया डेलिसिओसा* है तथा यह पर्णपाती पौधा है। यद्यपि इस फल का उद्गम स्थान चीन है परन्तु आर्थिक दृष्टि से इसका उपयोग न्यूजीलैंड में ही किया जाता है। वर्तमान समय में इसकी खेती इटली, चीन, जापान, ऑस्ट्रेलिया, फ्रांस, और स्पेन में व्यावसायिक स्तर पर की जा रही है। भारतवर्ष में सर्वप्रथम इस फल को बेंगलुरु में लगाया गया था परन्तु वहाँ इस बेल की सुषुप्तावस्था के लिए शीतकाल पर्याप्त न होने के कारण सफलता नही मिली। राष्ट्रीय पादप आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो, क्षेत्रीय संस्थान के शिमला स्थित केन्द्र, फागली में इसका उत्पादन सफल हुआ। सन् 1985 में डा. यशवन्त सिंह परमार औद्यागिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, सोलन के विभिन्न केन्द्रों में प्रयोग के लिए इसके पौधे प्राप्त किये गए तथा नौणी स्थित फल विज्ञान के प्रयोगात्मक बगीचे में इसको अपार सफलता मिली।

कीवी फल चीकू की तरह हल्के भूरे रंग का फल है। इसकी त्वचा पर भूरे रंग के बाल होते हैं एंव पकने पर इसका स्वाद मीठा तथा खुशबू काफी अच्छी होती है। इसमें विटामिन-सी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें फॉस्फोरस, लोहा तथा कैल्शियम भी अधिक पाया जाता है।

मृदा एवं जलवायु

यह उपोष्ण जलवायु का फल है तथा इसकी अधिक बढ़ने वाली पर्णपाती बेल है। जो क्षेत्र सेब के लिए गर्म हैं तथा उपोष्ण फलों जैसे नीबू प्रजातीय फल लोकाट और लीची के लिए ठण्डे होते हैं, वहाँ इसकी खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। यह समशीतोष्ण से उपोष्णीय क्षेत्रों में, जिनकी समुद्रतल से ऊँचाई 900-2000 मीटर होती है, वहां सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। वार्षिक वर्षा लगभग 50 सें.मी. इसके लिए पर्याप्त होती है। अप्रैल-मई में तेज वायु फलों को गिरा देती है तथा छोटी टहनियों को क्षति पहुंचाती है। सितम्बर-अक्टूबर में ओलावृष्टि सें पत्तियों और फलों को हानि पहुँचती है। कीवी फल को प्रायः सभी प्रकार की मृदा में उगाया जा सकता है। गहरी, पूर्णतया जल निकास वाली, बलुई दोमट मिट्टी सर्वोत्तम होती है। इसकी गहराई 1.0 से 2.0 मीटर तक होनी चाहिए। अन्य फलों की भांति इसे भी थोड़ी अम्लीय मृदा की आवश्यकता होती है, जिसका पी.एच.मान 5.0 से 6.0 हो, इसकी खेती के लिए उत्तम मानी जाती है।

किस्में

कीवी फल एकलिंगी पौधा है। अतः भिन्न-भिन्न पौधों पर नर और मादा फूल आते हैं। शोध में ऐसा पाया गया है कि नर फूल, मादा फूलों की अपेक्षा अधिक बड़े होते हैं। प्रमुख मादा फूल वाली किस्में हैं-हेवर्ड, एँबट, एलीसन, ब्रूनो और मोंटी तथा नर फूल वाली किस्में एलीसन, तोमुरी और मंतुआ हैं। अच्छे फलन के लिए 9 मादा पौधों के लिए एक नर पौधा लगाना आवश्यक है।

प्रवर्धन

कीवी फल के पौधे कई विधियों

*फल विज्ञान विभाग; **मूल विज्ञान विभाग; ***वृक्ष सुधार और आनुवंशिक संसाधन विभाग; डॉ यशवंत सिंह परमार औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौणी, सोलन, हिमाचल प्रदेश

मादा फूल

नर फूल

द्वारा तैयार किये जाते हैं। कलम विधि अधिक शीघ्र, सरल और उपयुक्त है। एक आदर्श कलम 0.5 से 1.0 सें.मी. मोटी, पूर्वान्तर वाली और 4 से 5 सें.मी. लम्बी तथा 3 से 8 गांठों वाली होनी चाहिए। कलम की निचली सतह पर 4 सें. मी. लम्बा घाव गांठ के नीचे बनाया जाता है। कलमों का निचला भाग 4000 से 5000 पी पी. एम. आई, बी, ए. नामक वृद्धि नियामक घोल में 10 सेकेंड के लिए डुबोया जाता है।

पौधा लगाना

कीवी फल का बगीचा लगाने के लिए रेखांकन भूमि के ढलान के हिसाब से करना चाहिए। पौधे से पौधे की दूरी भी किस्म और विधि कई बातों पर निर्भर होती है। हेवर्ड जाति कम फैलती है और इसे फैलाव के लिए कम स्थान चाहिए। साधारणतया सिधाई के लिए टी-बार या परगोला विधि का प्रयोग किया जाता है। इन दोनों विधियों के अन्तर्गत पौधे की सघनता में अन्तर आता है। टी-बार विधि में पौधे से पौधे का अन्तर 6 मीटर तथा पंक्ति से पंक्ति का अन्तर 4 मीटर रखा जाता है तथा परगोला विधि में 6 × 6 मी. का अन्तर रखा जाता है। एक घन मीटर माप के गड्ढे दिसम्बर में तैयार किये जाते हैं। इनमें 40 किलोग्राम गोबर की खाद और एक किलोग्राम सिंगल सुपरफॉस्फेट मृदा में मिलाया जाता है। पौधे जनवरी-फरवरी में लगाये जाते हैं।

सिधाई (ट्रेनिंग) एवं काट-छांट (प्रूनिंग)

कीवी फल की बेलों को सधाने की आवश्यकता होती है क्योंकि इससे लताओं का विकास और फलन अच्छा होता है। टी-बार सधाई विधि में लोहे या कंक्रीट के खम्भे, जो 4.8 मीटर लम्बे होते हैं, 6 मीटर के अंतर पर लगाये या बनाये जाते हैं। एक आड़ी तार हर खम्बे पर लगाई जाती है तथा शेष पाँच सीधी तारें लगाई जाती हैं। इनका आपसी अन्तर 45 सें.मी. रखा जाता है। मुख्य शाखा से निकल रही टहनियों को इन पांच तारों पर सधाया जाता है। परगोला सिधाई विधि की सिधाई लगभग टी-बार जैसे ही है। लता को 4.8 मीटर की ऊँचाई तक एक ही तने में रखा जाता है। इस स्थान से तने को सभी ओर फैलने दिया जाता है, यह दिशा तार के दोनों ओर होती है। परगोला जैसी छत बनाने के लिए मुख्य तने से समकोण पर फल देने वाली शाखायें ली जाती हैं। इस विधि में फल

टी-बार सिधाई

काट-छाँट के बाद

हाथ से परागण

प्रदान करने वाली टहनियां टी-बार विधि से अधिक लम्बे समय तक सुरक्षित रखी जा सकती हैं। अस्थाई शाखाओं को इन्हीं फल प्रदान करने वाली शाखाओं से चुना जाता है। कीवी फल कीट परागित फसल है लेकिन आमतौर पर कीवी का फूल आकर्षक नहीं होता है, जिसके कारण हाथ से परागण किया जाता है।

खाद और उर्वरक

कीवी की लतायें अधिक फल देती हैं, इसलिए इन्हें सामान्य विकास और फलने के लिए पर्याप्त खाद और उर्वरक की आवश्यकता होती है। उर्वरकों का निर्धारण मृदा की उर्वरता, लता की आयु और फलोत्पादन पर आश्रित है। पांच वर्ष के पौधे में 40 किलोग्राम गोबर की खाद, 850 ग्राम नाइट्रोजन, 500 ग्राम सुपर फॉस्फेट तथा 800 से 850 ग्राम पोटेशियम प्रति वर्ष दिये जाते हैं। नाइट्रोजन को दो बराबर भागों में दिया जाता है। आधा भाग जनवरी-फरवरी तथा शेष आधा फल बनने पर अर्थात अन्त अप्रैल या आरम्भ मई में डाला जाता है। फॉस्फोरस और पोटेशियम की पूरी मात्रा को गोबर की खाद के साथ ही दिसम्बर-जनवरी में भूमि में डाला जाता है।

परिपक्वता एवं तुड़ाई

कीवी फल के आवरण तथा गूदे के रंग में प्राय: कोई परिवर्तन नहीं आता, जिससे परिपक्व होने का अनुमान लगाया जा सके। फल का आकार काफी परिवर्तनशील तथा

तैयार फल

भिन्न है। इससे फल के पकने का अनुमान लगाना असम्भव है। कीवी फल में परिपक्वता का अनुमान लगाने के लिए घुलनशील पदार्थों (टी.एस.एस.), गूदे और आवरण की कठोरता और फलों को तोड़ने के सही समय की जानकारी आवश्यक है। मुख्यत: परिपक्वता मान का 6.2 प्रतिशत कुल घुलनशील तत्व माना जाता है। अच्छी फसल के लिए कीवी फल को 5 वर्ष का समय लग जाता है, परन्तु व्यावसायिक स्तर पर 8 से 40 वर्षो का समय लग जाता है। हेवार्ड किस्म अन्य किस्मों की अपेक्षा अधिक समय बाद उचित मात्रा के फल देने योग्य होती है। तुड़ाई का समय अक्टूबर से दिसम्बर तक है परन्तु यह समय किस्म, समुद्रतल से ऊँचाई और मौसम की स्थिति पर निर्भर करता है। अच्छे व्यवस्थित बगीचों से लगभग 15 से 20 मीट्रिक टन प्रति हैक्टर फल प्राप्त होते हैं। मध्य पर्वतीय क्षेत्रों में एक लता से औसतन 50 से 60 किलोग्राम फल प्राप्त होते हैं।

उत्तर भारत में स्ट्रॉबेरी की खेती

तेजबल सिंह*, **जे.एस. बोहरा****, **प्रियांशु सिंह***** और **आनन्द कुमार सिंह*****

स्ट्रॉबेरी एक शाकीय, छोटा, कोमल तथा बहुवर्षीय पौधा है जिसका वानस्पतिक नाम *फ्रेगेरिया अननासा* है। यह रोजेसी कुल का सदस्य है। स्ट्रॉबेरी के फल मध्यम आकार (10 से 15 ग्राम), चित्ताकर्षक, सुवासयुक्त और सिंदूरी रंग लिए हुए बहुत ही नरम बड़े लुभावने, रसीले एवं पौष्टिक होते हैं। इनका खाने योग्य भाग लगभग 98 प्रतिशत है। इसमें विटामिन-सी तथा लौह तत्व प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। यह अन्य फल वाली फसलों की तुलना में अल्पावधि (3 से 4 महीने) में ज्यादा मुनाफा देती है।

प्रायः भारत विभिन्नताओं का देश है। इसके हर एक क्षेत्र की भिन्न-भिन्न जलवायु है जो सभी फसलों को एक समान सभी जगहों पर उगाने की अनुमति नहीं देती है। इसी कारण से कई ऐसी फसलें हैं, जो किसानों को अधिक मुनाफा प्रदान करने वाली होते हुए भी उनकी खेती नहीं की जा सकती है। ऐसी ही फसलों में से एक स्ट्रॉबेरी की भी फसल है जिसकी खेती सर्वप्रथम भारत में उत्तर प्रदेश तथा हिमाचल प्रदेश के कुछ पहाड़ी क्षेत्रों में 1960 के दशक से शुरू हुई। परन्तु उपयुक्त किस्मों की अनुपलब्धता तथा तकनीकी ज्ञान की कमी के कारण इसकी खेती में अब तक कोई विशेष सफलता नहीं मिल सकी। भारत में कुछ वर्षों पूर्व तक स्ट्रॉबेरी की खेती केवल ठन्डे प्रदेशों व पहाड़ी क्षेत्रों तक ही सीमित थी। परन्तु निरंतर रूप से होने वाले शोधों एवं सुधारों से, आज अधिक उपज देने वाली विभिन्न किस्में, तकनीकी ज्ञान, परिवहन, शीतभण्डार और प्रसंस्करण व परिरक्षण की जानकारी होने से स्ट्रॉबेरी की खेती लाभप्रद व्यवसाय बनती जा रही है। इसका उपयोग कई मूल्य संवर्धित उत्पादों जैसे आईसक्रीम, जैम, जेली, कैंडी, केक इत्यादि बनाने के लिए भी किया जाता है। उपयुक्त लाभों को देखकर तथा वर्तमान में नई उन्नत प्रजातियों के विकास से इसको उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय जलवायु में भी सफलतापूर्वक उगाया जाने लगा है। इसी का नतीजा है कि स्ट्रॉबेरी जैसी फसल ठंडे प्रदेशों के अलावा अब गर्म प्रदेशों में भी किसानों को बम्पर मुनाफा दे रही है। प्रायः अधिक से अधिक लाभ के लिए उचित पद्धति से खेती की जानकारी अत्यंत आवश्यक होती है, जो आगे वर्णित है:

स्ट्रॉबेरी

*शोध छात्र, सस्य विज्ञान विभाग; **प्रवक्ता, सस्य विज्ञान विभाग; ***शोध छात्र, उद्यान विज्ञान विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

उपयुक्त जलवायु

भारत में स्ट्रॉबेरी की खेती शीतोष्ण क्षेत्रों में सफलतापूर्वक की जाती है। परंतु

स्ट्रॉबेरी की उन्नत किस्में

भारत के विभिन्न भागों में उगाने के लिए स्ट्राबेरी की बहुत सी उन्नत किस्में एन आर राउंड हैड, रैड कोट, कंटराई, चांडलर, स्वीट चार्ली, पजारो, सेल्वा, टडोगा, टोरे, विन्टर डक्नन, लोरिना, कैमा रोजा, डागलस, बेलरूबी, दाना तथा ईटना इत्यादि हैं। इनमें अच्छा आकार टोरे तथा एन आर राउंड हैड का ही है जिनके फल का वजन 4-5 ग्राम होता है। व्यावसायिक रूप से खेती करने के लिए प्रमुख किस्में निम्नलिखित हैं-ओफ्रा कमारोसा, चांडलर, स्वीट चार्ली, ब्लैक मोर, एलिस्ता, सिसकेफ, फेयर फाक्स आदि। उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्र के लिए चांडलर सबसे उपयुक्त किस्म है। इसके फल 15-20 ग्राम के होते हैं तथा इनमें शर्करा की मात्रा 6.1 प्रतिशत होने के साथ-साथ ही यह वर्षा से होने वाली शारीरिक चोट से प्रतिरोधी और विषाणु के प्रति सहनशील होते हैं। इसको खाने के साथ-साथ प्रसंस्करित भी किया जा सकता है। सामान्यतया इसकी उपज 200-500 ग्राम प्रति पौधा मिल जाती है।

स्ट्रॉबेरी के फल में पोषक तत्व

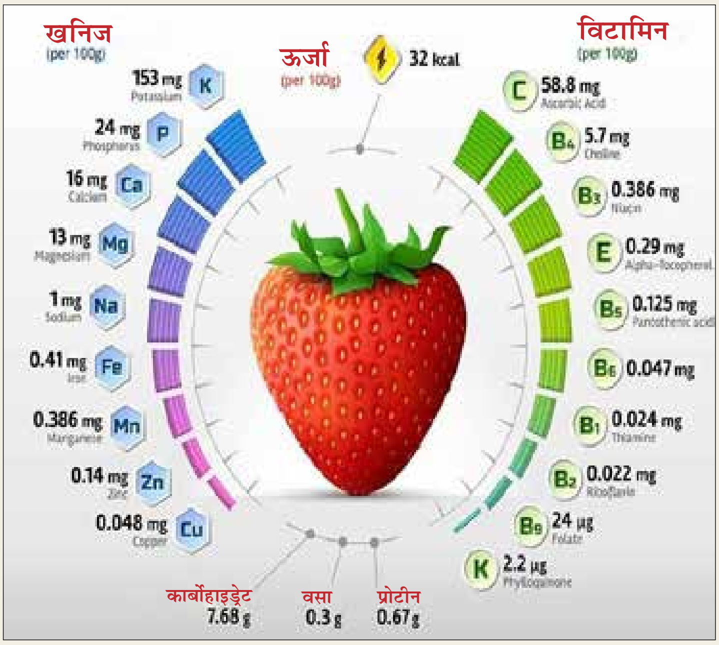

तत्व	मात्रा	प्रतिशत
राइबोफ्लेविन (विटामिन-बी2)	0.022 मिग्रा.	2
नियासीन (विटामिन-बी3)	0.386 मिग्रा.	2.5
पैंटोथेनिक एसिड (विटामिन-बी5)	0.125 मिग्रा.	2.5
पाइरिडोक्सिन (विटामिन-बी6)	0.047 मिग्रा.	3.5
फोलेट्स (विटामिन-बी9)	24 –ग्रा.	6
विटामिन-ए	12 आई.यु.	0.5
विटामिन-सी 58.8 मिग्रा.	98	
विटामिन-ई	0.29 मिग्रा.	2
विटामिन-के	2.2–ग्रा.	2
सोडियम	1 मिग्रा.	0
पोटेशियम	153 मिग्रा.	3
कैल्शियम	16 मिग्रा.	1.6
लौह तत्व	0.41 मिग्रा.	5
मैग्नीशयम	13 मिग्रा.	3
मैंग्नीज	0.386 मिग्रा.	17
जस्ता (जिंक)	0.14 मिग्रा.	

उन्नत किस्मों के विकास से इसको अब समशीतोष्ण एवं उष्णकटिबंधीय जलवायु में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। मैदानी क्षेत्रों में सिर्फ सर्दियों में ही इसकी एक फसल ली जा सकती है। यह कम प्रकाश अवधि वाला पौधा है। इसमें पुष्पण प्रारंभ होने के लिए लगभग 10 दिनों तक 8 घंटे से कम प्रकाश अवधि की जरूरत होती है। पौधों की अच्छी बढ़वार के लिए दिन का अधिकतम तापमान 22 डिग्री सेल्सियस और रात का तापमान 7 से 13 डिग्री सेल्सियस उपयुक्त माना गया है, जो कि अक्टूबर-नवम्बर में उपलब्ध होता है। इसी समय रनर या स्टोलन को जिन्हें शीतोष्ण क्षेत्रों से मँगा कर लगाया जाता है। जाड़े में पौधों की निष्क्रियता के कारण बढ़वार नहीं होती है परन्तु न्यून तापमान अवस्था पौधों की प्रसुप्तावस्था को तोड़ने में बहुत ही सहायक होती है। जैसे ही तापमान बढ़ता है पुष्पण प्रारम्भ हो जाता है। यहाँ फल फरवरी-मार्च में तैयार हो जाते हैं।

स्ट्रॉबेरी के लिए भूमि का चुनाव

स्ट्रॉबेरी की खेती विभिन्न प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है परन्तु यह अच्छे जल निकास वाली दोमट मिट्टी जिसका पी. एच. मान 5.5 से 6.5 हो तथा जिसमें उच्च जैविक कार्बन हो, उेंपयुक्त होती है। उच्च जैविक कार्बन वाली हल्की मृदा रनर बनाने के लिए सबसे अच्छी मानी जाती है। लवणीय मृदा तथा जिसमें सूत्रकृमि उपस्थित हों, स्ट्रॉबेरी की खेती के लिए अनुपयुक्त होती है।

पौधा लगाने का समय

आमतौर पर स्ट्रॉबेरी का प्रवर्धन रनर (लता को पकड़ने वाली नोंक) या स्टोलन के द्वारा किया जाता है। स्ट्रॉबेरी का पौधा लगाने का समय कृषि जलवायु क्षेत्र के अनुसार अलग- अलग होता है। प्रायः उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में इसकी रोपाई सितम्बर-अक्टूबर माह में करते हैं, परन्तु अधिक तापमान होने पर थोड़ी देर से रोपाई करनी चाहिए। पौधों को सूखने से बचाने के लिए रोपाई दिन के ठंडे समय में करनी चाहिए।

स्ट्रॉबेरी के लिए खेत की तैयारी एवं पलवार बिछाना

स्ट्रॉबेरी के पौधे लगाने से 20-25 दिनों पूर्व भूमि की दो से तीन बार अच्छी तरीके से जुताई करने के पश्चात 50-80 टन प्रति हैक्टर अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद को मिट्टी में मिला देते हैं। फॉस्फोरस की पूरी मात्रा को भी मिट्टी की अंतिम तैयारी के समय मिला देते हैं। मैदानी क्षेत्रों में स्ट्रॉबेरी की खेती 60-75 सेंमी. चौड़ाई वाली लम्बी तथा 25 सेंमी. ऊंची क्यारियाँ बनाकर, जिसमें दो कतारें लगाई जा सकें, की जाती हैं। पौध की रोपाई किस्मानुसार पक्तियों में 25 सेंमी. से लेकर 60 सेंमी. तथा पौध से पौध की दूरी

तैयार होती स्ट्रॉबेरी फसल

25-45 सेंमी. में की जाती हैं। क्यारियों को बनाने के बाद टपक सिंचाई की पाइपलाइन बिछा देनी चाहिए। पौधा लगाने से पूर्व 25 से 30 माइक्रॉन मोटी प्लास्टिक चादर से प्लास्टिक मल्चिंग करके उस पर गोलाई में पाइप से पौधों से पौधों की दूरी तय कर के छिद्र कर लें। इन छेदों में नर्सरी में तैयार पौधों की रोपाई कर देनी चाहिए। स्ट्रॉबेरी की खेती के लिए पलवार बिछाना एक आवश्यक तकनीक है जिसके द्वारा खेत में नमी संरक्षण के साथ-साथ खरपतवार नियंत्रण, जड़ों के अच्छे विकास के लिये भूमि को पोली रखना व अच्छी गुणवत्ता वाले फल प्राप्त करने में सहायता मिलती है। यह शरद ऋतु में पौधों पर ठंड विगलन रोग के प्रभाव को रोकती है तथा अति निम्न तापमान पर पुष्पकली को मरने से बचाती है। स्ट्रॉबेरी की क्यारियों को 5-7 सेंमी. मोटी सूखी घास या काले रंग की प्लास्टिक की चादर से ढकने से फलों का सड़ना व पक्षियों द्वारा किया जाने वाला नुकसान कम हो जाता है।

पौध लगाने की विधि

किसी प्रमाणित व विश्वस्त नर्सरी से प्राप्त ज्ञात किस्म के रोगरहित पौधों को मैदानी क्षेत्रों में सितम्बर-अक्टूबर से लेकर नवम्बर तक लगाना चाहिए। लगाने से पहले पौध से पुराने पत्ते निकालकर केवल एक-दो नए उगने वाले पत्ते ही रखते हैं। पौधों की जड़ों को एक प्रतिशत बोर्डो मिश्रण या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.2 प्रतिशत) या डाइथेन एम 45 (0.2 प्रतिशत) के घोल में 10 मिनट तक उपचारित करके छाया में सुखा लेना चाहिए। पौध लगाने के समय क्यारियों में लगभग 15 सेंमी. गहरा छोटा गड्ढा बनाकर पौधा रखकर जड़ों के इर्द-गिर्द की मिट्टी को अच्छी तरह दबा देते हैं ताकि जड़ों तथा मिट्टी के बीच वायु न रहे। पौधों लगाने के बाद हल्की सिंचाई आवश्यक होती है।

खाद एवं उर्वरक

स्ट्रॉबेरी की फसल में खाद तथा उर्वरकों का उपयोग मृदानुसार करते हैं। अच्छी पैदावार के लिए 85-112 किग्रा. नाइट्रोजन, 56-90 किग्रा फॉस्फोरस तथा 56-112 किग्रा. पोटाश मुख्यतया जैविक स्रोतों से दिया जाता है। यह लम्बे समय तक मृदा में उपलब्ध रहता है या इसका कुछ भाग रासायनिक खादों से भी दे सकते हैं। आमतौर पर 50 ग्राम उर्वरक मिश्रण-किसान खाद (कैन), सुपर फॉस्फेट और म्यूरेट ऑफ पोटाश को 20:2:1 के अनुपात में देने की सिफारिश की जाती है। अधिक उर्वरक उपयोग दक्षता के लिए नाइट्रोजन की आधी एवं फॉस्फोरस की पूरी मात्रा को मृदा की तैयारी के समय तथा बचे हुए नाइट्रोजन को सक्रिय वृद्धि अवस्था में देना चाहिए। पोटाश की पूरी मात्रा को पुष्पण के समय देने से अधिक उत्पादकता के साथ -साथ अच्छी गुणवत्ता वाले फल प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त 2 प्रतिशत यूरिया, 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट, 0.5 प्रतिशत कैल्शियम सल्फेट एवं 0.2 प्रतिशत बोरिक एसिड को पानी के साथ घोलकर पौधों पर छिड़काव करना उत्पादकता एवं गुणवत्ता को बढ़ाने में लाभकारी होता है।

स्ट्रॉबेरी की फसल में सिंचाई तथा देखभाल

मृदा नमी स्ट्रॉबेरी की उचित पैदावार के लिए निर्णायक है। इसकी अधिकता या कमी पौध की फलत, उनके आकार और गुणवत्ता पर बुरा प्रभाव डालती है। इसलिए बार-बार परन्तु हल्की सिंचाई करनी चाहिए। सामान्यत: बूँद-बूँद सिंचाई विधि से शरद ऋतु में 10-15 दिनों तथा ग्रीष्म में 5-7 दिनों के अन्तराल सिंचाई पर करनी चाहिए। स्ट्रॉबेरी के पौधे लगाने के कुछ समय पश्चात उनके आसपास विभिन्न प्रकार के खरपतवार उग आते हैं। अक्टूबर में रोपित पौधों से नवंबर में फुटाव शुरू हो जाता है। फुटाव शुरू होने पर खेत की निराई-गुड़ाई करके खरपतवार निकाल देने चाहिए।

कीट व रोग नियंत्रण

स्ट्रॉबेरी की खेती को कई कीट व रोग क्षति पहुँचाते हैं। कीटों में तेला, माइट,

स्ट्रॉबेरी की तुड़ाई तथा पैकेजिंग

मैदानी क्षेत्रों में स्ट्रॉबेरी फरवरी से अप्रैल माह तक पकती है। फलों की तुड़ाई का समय बाजार की दूरी के अनुसार तय करते हैं। स्थानीय बाजार के लिए पूर्ण रूप से पके फल जब फल का रंग अच्छा हो जाये, तब करना चाहिए। अगर बाजार दूरी पर है, तो थोड़ा सख्त ही तोड़ना चाहिए। तुड़ाई अलग-अलग दिनों में प्रात: काल सूरज निकलने से पूर्व ही पूर्ण कर लेनी चाहिए। स्ट्रॉबेरी की तुड़ाई हाथ से फल को बिना पकड़े डंठल सहित करनी चाहिए। तोड़े हुए फलों को गहरे बर्तन में न रखकर ट्रे का प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि इसके फल बड़े नाजुक होते हैं और ऊंची परत के दबाव से नीचे के फलों को नुकसान पहुंच सकता है। नीचे दिए चित्र से स्ट्रॉबेरी के फल के आकार में विकास तथा रंगों में होने वाले परिवर्तन का पता चलता है जो कि तोड़ने वाले व्यक्ति के लिए अत्यंत आवश्यक है:

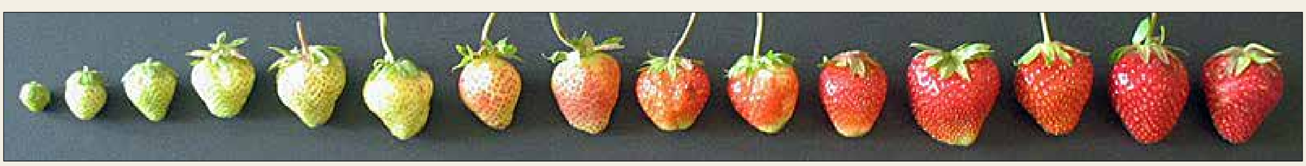

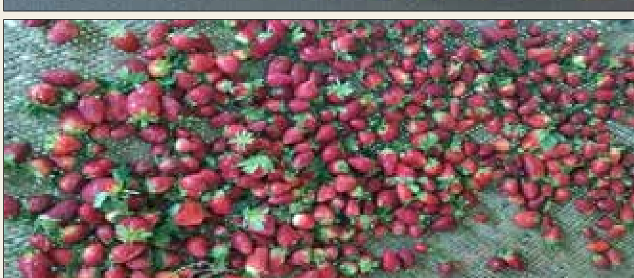

स्ट्रॉबेरी के फलों को 2 से 3 दिनों तक ही सुरक्षित रखा जा सकता है। अत: तोड़ने के बाद फलों को ज्यादा समय तक नहीं रखना चाहिए। बिक्री के लिए बाजार में भेजने के समय फलों को प्लास्टिक के छोटे डिब्बों में पैक करना चाहिए तथा बाद में इन डिब्बों को कोरूगेटिड फाइबर बोर्ड (सीएफबी) से बने बड़े डिब्बों में पैक करके भेजना चाहिए।

स्ट्रॉबेरी उत्पादन से पैकिंग तक की प्रक्रियाएं

कटवर्म तथा सूत्रकृमि प्रमुख हैं। डाइमथोएट, डिमैटोन, फॉरेट का प्रयोग इन्हें नियंत्रण में रखता है। 1.5 ग्राम/ली. की दर से वेटेबल सल्फर का छिड़काव करने से माइट को नियंत्रित किया जा सकता है। कटवर्म को 5 प्रतिशत क्लोरैडेन या हेप्टाक्लोर की 50किग्रा/है. की दर से धुलीकरण या रोपाई से पहले 2 मिली./ली. पानी के साथ मिट्टी में डालने से नियंत्रित किया जा सकता है। सामान्यतया स्ट्रॉबेरी के फलों पर भूरा फफूँद रोग तथा पत्तों पर धब्बों वाले रोग व काला जड़ सड़न रोग लगते हैं। भूरे फफूँद रोग को डायाथायोकॉर्बामेट पर आधारित फफूँदनाशक रसायनों जैसे डाइथेन एम-45 के स्प्रे से नियंत्रित किया जा सकता है। साप्ताहिक अंतराल पर वेटेबल सल्फर की 1.5 ग्राम प्रति लीटर पानी का दर से दो छिड़काव भूरा फफूँद रोग के लिए प्रभावी है। फल लग जाने के बाद किसी भी फफूँद व कीटनाशक रसायन का छिड़काव नहीं करना चाहिए।

पाले या सर्दी से बचाव

शरद ऋतु (दिसंबर से जनवरी) में तापमान में काफी गिरावट आ जाती है। इस समय खेत में स्ट्रॉबेरी के पौधों को पाले से बचाने के लिए निम्न सुरंग (लो-टनल) तकनीक का उपयोग काफी फायदेमंद होता है। इससे विपरीत ठंडे मौसम में भी अच्छा उत्पादन लिया जा सकता है। इसका निर्माण खुले खेत में उगाई जाने वाली फसल को कम तापमान या पाले से होने वाले नुकसान से बचाने के लिए किया जाता है। लो-टनल संरचना में हरितगृह जैसा ही वातावरण उत्पन्न हो जाता है। इससे पुष्पण जल्दी होता है और अच्छी फलत प्राप्त होती है। फरवरी के दूसरे या तीसरे सप्ताह में जब तापमान बढ़ जाता है तो प्लास्टिक चादर को पूर्णतः हटा देते हैं।

उपज एवं लाभ

उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में भी वैज्ञानिक तकनीक और अच्छा फसल प्रबंधन करने से प्रति पौधे से एक मौसम में 500 से 700 ग्राम तथा एक हैक्टर क्षेत्रफल से 20 से 25 टन स्ट्रॉबेरी फलों का उत्पादन हो जाता है। दिल्ली, मुंबई जैसे महानगरों में स्ट्रॉबेरी की प्रति किलो की कीमत 100 रुपये से 300 रुपये तक होती है। चूँकि अभी तक उत्तर भारत के शहरों में इसकी मांग होने पर भी उपलब्धता नहीं हो पाती है, इसलिए ऐसे क्षेत्रों में इसकी और अधिक कीमत पर बिकने की संभावनाएं हैं जो किसान के लिए सबसे अनुकूल परिस्थिति है। यदि देखा जाये तो किसानों को लागत से दोगुना से ज्यादा मुनाफा स्ट्रॉबेरी की खेती में होता है। ■

भाकृअनुप की मासिक लोकप्रिय पत्रिका
'खेती' पत्रिका के दिसंबर, 2022 अंक के मुख्य आकर्षण

- शुष्क जलवायु में तिल की खेती
- कैसे लें मूंग की भरपूर पैदावार
- जैव ईंधन उत्पादन के लिए उपयुक्त बाजरा
- उच्च गुणवत्ता वाले बीजों का महत्व
- मधुमक्खी पालन है एक लाभदायक व्यवसाय
- महिलाओं के लिए नई रोशनी योजना
- आमदनी खस उत्पादन से
- फिश एक्वेरियम निर्माण से आमदनी
- पाबदा मछली की बढ़ती मांग
- हरे चारे के लिए मक्का
- धान में सूत्रकृमि का प्रबंधन
- कृषि तथा पशुपालन क्षेत्र में स्टार्टअप्स की सरकारी योजनाएं
- गैनोडर्मा है स्वास्थ्य के लिए लाभकारी
- पशु आहार में खरपतवार
- मानसून की अनिश्चितता में आकस्मिक योजना
- मृदा परीक्षण के लाभ
- पारिस्थितिकी तंत्र में सहायक है पुनर्योजी कृषि
- आहारीय रेशे हैं स्वास्थ्यवर्द्धक
- पशुजन्य उत्पादों में प्रतिजैविक अवशेषों का नियंत्रण

संपर्क सूत्र: प्रभारी, व्यवसाय एकक, भाकृअनुप-कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, कैब-1, पूसा गेट, नई दिल्ली-110012
दूरभाष: 25843657, www.icar.org.in

नैनो उर्वरकों का जीरा उत्पादन में योगदान

योगेन्द्र कुमार*, ए. पी. सिंह, किशन सिंह**, तरुणेन्दु सिंह*** और **के. एन. तिवारी*****

जीरा, रबी मौसम की प्रमुख मसाला वर्गीय फसल है। यह लोहा, तांबा, कैल्शियम, पोटेशियम, मैंगनीज, सेलेनियम, जिंक और मैग्नीशियम, रेशा तथा विटामिन का एक उत्कृष्ट स्रोत है। जीरे का उत्पादन करने वाले देशों में भारत, तुर्की, सीरिया, ईरान और चीन प्रमुख देश हैं। भारत में जीरे की खेती मुख्यत: राजस्थान तथा गुजरात राज्यों में की जाती है। वर्ष 2018-19 में भारत में कुल 10.27 लाख हैक्टर क्षेत्रफल में खेती की गई और औसत उपज 681 किलोग्राम / हैक्टर रही। वहीं वर्ष 2018-19 में राजस्थान में जीरे की खेती 6.76 लाख हैक्टर क्षेत्र में की गयी परंतु उत्पादकता 658 किलोग्राम / हैक्टर रही, जो देश की औसत उपज से भी कम है। राजस्थान की मृदा में नाइट्रोजन की कमी सर्वव्यापी है एवं 50% मृदा में जिंक तथा 10% मृदा में तांबे की कमी भी पायी गई है। अजमेर, बाड़मेर, जालौर, जोधपुर, नागौर, भीलवाड़ा, टोंक, जोधपुर, सिरोही, सीकर और पाली जिले जीरा उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र हैं।

फसल उत्पादन को प्रभावित करने वाले कारकों में उर्वरक प्रमुख हैं। पारंपरिक उर्वरकों की उपयोग दक्षता बहुत कम (नाइट्रोजन-30 से 50 प्रतिशत; जिंक तथा तांबा-2.5 प्रतिशत) होने के कारण पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। संतुलित एवं विशिष्ट उर्वरकों के प्रयोग से जीरे की फसल में उपयोग दक्षता, अधिक उत्पादकता एवं गुणवत्ता सुनिश्चित की जा सकती है। इस लेख में राजस्थान में इफको के नैनो उर्वरकों द्वारा जीरे की फसल की उपज वृद्धि और आर्थिक लाभ पर अध्ययन एवं वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

नैनो उर्वरक

इफको द्वारा नैनो यूरिया, नैनो जिंक तथा नैनो कॉपर का निर्माण स्वदेशी तकनीक से नैनो बॉयोटेक्नोलॉजी रिसर्च सेंटर (एनबीआरसी) कलोल, गुजरात में किया गया है। नैनो तकनीक द्वारा निर्मित उर्वरकों का आकार 100 नैनोमीटर से कम होता है। सतही क्षेत्रफल कई गुना बढ़ने से इनकी कार्य दक्षता अधिक होती है। नैनो यूरिया में 4.0% कुल नाइट्रोजन होता है, नैनो जिंक में 1.0% कुल जिंक और नैनो कॉपर में 0.8% कुल तांबा होता है।

नैनो यूरिया (40,000 पी पी एम) की मात्रा/2 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी या 250 मिलीलीटर प्रति एकड़ / स्प्रे 125-150 लीटर पानी की मात्रा के अनुसार, खड़ी फसल में पत्तियों पर छिड़काव करते हैं। नैनो यूरिया का पहला छिड़काव अंकुरण/रोपाई के 30-35 दिनों बाद तथा दूसरा छिड़काव फूल या बालियाँ आने के एक सप्ताह पूर्व करना चाहिये। नैनो जिंक का एक छिड़काव अंकुरण/रोपाई के 30-35 दिनों बाद करना चाहिये और नैनो कॉपर का एक छिड़काव फूल आने के एक सप्ताह पूर्व करना चाहिये। नैनो यूरिया, नैनो जिंक एवं नैनो कॉपर को मिलाकर भी स्प्रे कर सकते हैं। पर्णीय छिड़काव के बाद नैनो उर्वरकों के कण स्टोमेटा या अन्य रिक्त स्थानों के माध्यम से आसानी से पत्तियों में प्रवेश कर जाते हैं और कोशिकाओं द्वारा आसानी से अवशोषित कर लिये जाते हैं।

नैनो यूरिया नैनो जिंक नैनो कॉपर

कृषकों द्वारा औसत 65.9 किलोग्राम यूरिया तथा 51.5 किलोग्राम डीएपी प्रति हैक्टर की दर से उर्वरकों का उपयोग किया गया।

नैनो उर्वरक से समाधान

भारत में खाद्यान्न उत्पादन वृद्धि में उर्वरकों का योगदान लगभग 50 प्रतिशत माना गया है। उर्वरकों की उपयोग दक्षता का कम होना संसाधनों के दुरुपयोग एवं पर्यावरण प्रदूषण के लिए भी एक बड़ी चुनौती है। इस कड़ी में नैनो तकनीकी आधारित उर्वरक एक महत्वपूर्ण विकल्प के रूप में सामने आये हैं। इस क्रम में उर्वरकों की उपयोग दक्षता एवं पारंपरिक उर्वरकों के उपयोग को घटाने में बेहतर मृदा स्वास्थ्य एवं पर्यावरण संरक्षण में नैनो उर्वरक निश्चित ही मील का पत्थर साबित होंगे।

उपचार के अनुसार डीएपी की पूरी मात्रा तथा यूरिया की आधी मात्रा बुआई के समय तथा यूरिया की आधी मात्रा बुआई के 30-60 दिनों पर दी गई। अन्य सस्य एवं फसल प्रबंधन क्रियाएँ क्षेत्रीय स्तर पर सामान्य रूप से की गई।

*इंडियन फारमर्स फर्टिलाइजर कोआपरेटिव लि., इफको सदन, सी-1, डिस्ट्रिक्ट सेंटर, साकेत प्लेस, साकेत, नई दिल्ली-110017
**इंडियन फारमर्स फर्टिलाइजर कोआपरेटिव लि., तृतीय तल, नेहरू सहकार भवन, भवानी सिंह मार्ग जयपुर- 302001
***इंडियन फारमर्स फर्टिलाइजर कोआपरेटिव लि., 8 गोखले मार्ग, लखनऊ- 226001

इफको नैनो उर्वरकों का उपयोग

इफको द्वारा रबी 2019-20 में जीरा की फसल पर नैनो उर्वरकों का प्रभाव देखने हेतु राजस्थान के 6 जिलों में किसानों के खेत पर 129 क्षेत्र परीक्षण लगाये गये। जीरा फसल की बुआई (10-12 किलोग्राम/हैक्टर बीज की दर) से अक्टूबर माह के अंतिम सप्ताह से दिसम्बर माह के प्रथम सप्ताह तक 5 उपचार के साथ की गई (सारणी 1)। प्रयोग में नैनो यूरिया (25000 पीपीएम), नैनो जिंक (5000 पीपीएम) तथा नैनो कॉपर (2000 पीपीएम) का 4 मिलीलीटर की मात्रा से प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव किया गया। पहला छिड़काव अंकुरण के तीन सप्ताह बाद तथा दूसरा छिड़काव पहले के दो सप्ताह अथवा अंकुरण के 5 सप्ताह बाद किया गया। पांचवें उपचार में कॉपर का तीसरा छिड़काव, दूसरे छिड़काव के दो सप्ताह के बाद किया गया।

सारणी 1 : जिलेवार नैनो उर्वरकों के उपयोग का जीरा फसल की उपज पर प्रभाव (रबी 2019-20)

जिले का नाम	प्रदर्शन (सं)	औसत उपज, (कि.ग्रा./है.)				
		100% नाइट्रोजन (टी1)	50% नाइट्रोजन + नैनो यूरिया (टी2)	100% नाइट्रोजन + नैनो जिंक (टी3)	100% नाइट्रोजन + नैनो कॉपर (टी4)	50% नाइट्रोजन + नैनो यूरिया + नैनो जिंक + नैनो कॉपर (टी5)
अजमेर	2	1295	1450	1450	1525	1590
बाड़मेर	40	631	686	657	654	690
जालौर	2	803	843	853	843	865
जोधपुर	28	773	830	826	806	852
नागौर	24	960	1014	991	975	1054
पाली	33	946	990	983	975	1017
योग/औसत	**129**	**817**	**870**	**855**	**845**	**893**

क्षेत्र परीक्षण के परिणाम

उत्पादन के आंकड़ों से यह स्पष्ट है कि अधिकतम औसत उपज, साधारण यूरिया की आधी मात्रा के साथ नैनो यूरिया के 1 छिड़काव, नैनो जिंक के 1 छिड़काव, नैनो कॉपर के 1 छिड़काव (टी 5) के साथ प्राप्ति हुई जो कि साधारण यूरिया की पूरी मात्रा (कृषक पद्धति टी 1) में प्राप्त उपज की तुलना में 76 किलोग्राम प्रति हैक्टर (9.3%) अधिक है (सारणी 1)। साधारण यूरिया की आधी मात्रा के साथ नैनो यूरिया के 2 छिड़काव (टी 2) में प्राप्त उपज साधारण यूरिया की पूरी मात्रा (कृषक पद्धति टी 1) के साथ प्राप्त उपज की तुलना में 53 किलोग्राम प्रति हैक्टर (6.8%) अधिक है। इसी प्रकार साधारण यूरिया की पूरी मात्रा के साथ नैनो जिंक के 2 छिड़काव (टी 3) तथा साधारण यूरिया की पूरी मात्रा के साथ नैनो कॉपर के 2 छिड़काव (टी 4) में प्राप्त उपज केवल साधारण यूरिया (टी 1) के साथ प्राप्त उपज से क्रमश: 38 किलोग्राम प्रति हैक्टर (4.7%) तथा 28 किलोग्राम प्रति हैक्टर (3.5%) अधिक है।

नैनो उर्वरकों के प्रभाव का जीरे की फसल के आर्थिक विश्लेषण में पाया गया कि अधिकतम शुद्ध लाभ, साधारण यूरिया की आधी मात्रा के साथ नैनो यूरिया के 1 छिड़काव, नैनो जिंक के 1 छिड़काव, नैनो कॉपर के 1 छिड़काव से प्राप्त हुई। यह साधारण यूरिया की पूरी मात्रा (कृषक पद्धति, टी 1) से प्राप्त शुद्ध लाभ की तुलना में रु. 7259 प्रति हैक्टर (12.7%) अधिक है। साधारण यूरिया की आधी मात्रा के साथ नैनो यूरिया के 2 छिड़काव (टी 2) में प्राप्त उपज साधारण यूरिया की पूरी मात्रा (कृषक पद्धति टी 1) से प्राप्त शुद्ध लाभ की तुलना में रु. 5295 प्रति हैक्टर (9.3%) अधिक रिकार्ड की गई। नैनो उर्वरकों के उपयोग से (टी2 तथा टी5 में) यूरिया की आधी बचत के साथ रु. 5295 से 7259 (9.3-12.7) का अधिक शुद्ध लाभ भी पाया गया। ■

सफलता गाथा

खजूर की खेती में बेर की अंतरफसल

श्री सोना राम, निवासी भेदना गांव, गुडामालानिटो तहसील, जिला बाड़मेर, ने वर्ष 2016 में खजूर (किस्म बार्धी) की खेती प्रारंभ की। उन्होंने एक हैक्टर क्षेत्रफल में 8 मी. के अंतराल पर पंक्ति-दर-पंक्ति तथा 6 मी. के अंतराल पर पादप-दर-पादप खजूर के 208 पौधों का रोपण किया। खेती की उच्च लागत के कारण उन्हें न्यून लाभ:लागत अनुपात प्राप्त हुआ, जिससे उन्होंने कुछ नया करने के बारे में सोचा। तब उन्होंने केवीके, बारमेर-।। के पर्यवेक्षण के तहत खजूर के खेतों में बेर की अंतरफसल लेने का फैसला किया। उन्होंने अपने खजूर के खेतों में अंतरफसल के रूप में 204 बेर पौध का रोपण किया। बेर की अंतरफसल से इनको खजूर की एकल खेती की तुलना में, उच्च लाभ प्राप्त करने में सहायता मिली। उन्होंने खजूर की खेती से रु. 206,855 प्रति हैक्टर का शुद्ध लाभ तथा 2.12 का लाभ:लागत अनुपात प्राप्त किया। बेर के साथ खजूर की अंतरफसल से उन्हें रु. 278,095 प्रति हैक्टर का शुद्ध लाभ प्राप्त हो रहा है। ■

लीची में पोषण प्रबन्धन

मनु त्यागी*, जगदीश सिंह, नवप्रेम सिंह***** और **बिक्रमजीत सिंह******

लीची एक स्वादिष्ट फल है, जो अपने आकर्षक रंग के कारण 'फलों की रानी' के रूप में जाना जाता है। लीची के फलों में 60 प्रतिशत रस, 8 प्रतिशत गूदा, 19 प्रतिशत बीज तथा 13 प्रतिशत छिलका होता है। इसके साथ ही यह चिकित्सीय और औषधीय गुणों का भी समृद्ध स्रोत है। इसके फलों की घरेलू एवं अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में काफी मांग है। व्यावसायिक बागवानी द्वारा किसान तथा नौजवान लीची से अच्छी आमदनी प्राप्त कर सकते हैं। भारतवर्ष में लीची की व्यावसायिक बागवानी मुख्य रूप से बिहार, झारखण्ड, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, पश्चिम बंगाल, पंजाब, हरियाणा, असोम आदि राज्यों में की जाती है। पिछले कुछ वर्षों में लीची के क्षेत्रफल तथा उत्पादन में आशातीत वृद्धि हुई है।

शोध के अनुसार एक हजार किलो लीची फल उत्पादन हेतु मिट्टी से 2.2 किलोग्राम नाइट्रोजन, 2.0 किलो ग्राम फॉस्फोरस, 6.6 किलोग्राम पोटाश, 1.6 किलोग्राम कैल्शियम तथा 1.1 किलोग्राम मैग्नीशियम की निकासी होती है। भारतवर्ष में लीची की औसत उत्पादकता 7.65 मीट्रिक टन प्रति हैक्टर है। इस प्रकार, फल उत्पादन हेतु मिट्टी से औसतन 16.80 किलोग्राम नाइट्रोजन, 16.80 किलोग्राम फॉस्फोरस, 50.50 किलोग्राम पोटाश, 12.20 किलोग्राम कैल्शियम तथा 8.41 किलोग्राम मैग्नीशियम की निकासी होती है। पोषक तत्वों की कमी पूर्ति तथा नियमित फल उत्पादन हेतु नियमित रूप से खाद एवं उर्वरक का प्रयोग करना चाहिए।

पोषक तत्वों की कमी के लक्षण

नाइट्रोजन

नाइट्रोजन की कमी के लक्षण पुरानी पत्तियों पर सर्वप्रथम दिखाई देते हैं। इसकी कमी से प्रभावित पत्तियों का रंग पीला हो जाता है तथा पौधों की बढ़वार में कमी आ जाती है। ग्रसित वृक्षों में नए कल्लों एवं मंजर का विकास धीमा हो जाता है, जिसके कारण उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है। प्रभावित वृक्षों में फलों के आकार तथा गुणवत्ता में भी कमी आ जाती है। नाइट्रोजन की कमी आमतौर पर अधिक वर्षा वाले क्षेत्र जहाँ बलुई मिट्टी पायी जाती हो अथवा जल भराव वाली भूमि पर होती है।

नाइट्रोजन की कमी के लक्षण

फॉस्फोरस

फॉस्फोरस की कमी से वानस्पतिक वृद्धि प्रभावित होती है। पत्तियों का आकार छोटा हो जाता है तथा फलोत्पादन में गिरावट आ जाती है। इसकी कमी से पुरानी पत्तियों का रंग तांबे जैसा हो जाता है। पत्तियों की शिराएँ सूख जाती हैं, जिससे इनका झड़ना प्रारम्भ हो जाता है। अम्लीय एवं क्षारीय मृदा में फॉस्फोरस की कमी आम होती है। इन मृदाओं में पानी में घुलनशील फॉस्फोरस ऐसे रूप में बदल जाता है, जिसे पौधे आसानी से प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

*एवं****कृषि विज्ञान केन्द्र, पठानकोट; **क्षेत्रीय अनुसंधान स्टेशन, गुरदासपुर; ***पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना

लीची उत्पादन

भारतवर्ष में लीची की बागवानी सन् 1950 में 9400 हैक्टर क्षेत्रफल पर की जाती थी, जो वर्ष 2018-19 में बढ़कर 95000 हैक्टर क्षेत्रफल हो गयी है। पिछले एक दशक में लीची के क्षेत्रफल में 27.60 प्रतिशत, उत्पादन में 47.10 प्रतिशत व उत्पादकता में 17.80 प्रतिशत की बढ़ोतरी दर्ज की गई है। हाल के वर्षों में पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश व केन्द्र शासित प्रदेश जम्मू के उप-पर्वतीय क्षेत्रों में लीची की बागवानी में जो बढ़ोतरी दर्ज हुई है, उसमें उपयुक्त जलवायु व मृदा उर्वरता का विशेष योगदान है। पंजाब व जम्मू के विभिन्न क्षेत्रों में राज्य प्रायोजित लीची उन्मुख परियोजनाओं की स्थापना की गई है, जो लीची बागवानी को और बढ़ावा देने में लाभकारी सिद्ध होगी।

फॉस्फोरस की कमी के लक्षण

पोटेशियम

इस पोषक तत्व की कमी के लक्षण सर्वप्रथम पुरानी पत्तियों पर दिखाई देते हैं। पत्तियों के सिरे व किनारे पीले पड़ जाते हैं और बाद में झुलसने लगते हैं। ग्रसित वृक्षों में फल कम लगते हैं एवं गुणवत्ता (फल का आकार, रंग आदि) पर प्रभाव पड़ता है। इस तत्व की कमी से लीची के वृक्षों में सूखा सहने की क्षमता एवं रोग प्रतिरोधिता में कमी आ जाती है। अधिक वर्षा वाली हल्की बलुई और लेटराइट मृदा में पोटाश की कमी आ जाती है। इसके अतिरिक्त जिन मृदाओं में सोडियम, मैग्नीशियम व कैल्शियम की अधिकता होती है, वहाँ पोटेशियम की कमी होती है।

पोटेशियम की कमी के लक्षण

कैल्शियम

कैल्शियम की कमी के लक्षण नयी पत्तियों पर आते हैं। इसकी कमी से प्रभावित पौधों के अग्रभाग मरने लगते हैं, जिससे पादप वृद्धि तथा फलत में कमी हो जाती है। पत्तियों का आकार प्रभावित होता है तथा ग्रसित पत्तियों की शिराओं के बीच का स्थान झुलस जाता है। अम्लीय तथा हल्की बलुई मृदा में कैल्शियम की कमी की अधिक आशंका रहती है।

कैल्शियम की कमी के लक्षण

मैग्नीशियम

इस पोषक तत्व की कमी से प्रभावित पत्तियों के हरे रंग में कमी आ जाती है। ग्रसित पत्तियों की शिराओं के बीच का भाग पीला पड़ जाता है। धीरे-धीरे पत्तियों के किनारे झुलस जाते हैं तथा पत्तियां गिर जाती हैं। अधिक अम्लीय मृदा में मैग्नीशियम की कमी होती है व जिस मृदा में कैल्शियम, पोटेशियम व सोडियम की कमी अधिक हो, वहां मैग्नीशियम पौधों को उपलब्ध नहीं हो पाता है।

मैग्नीशियम की कमी के लक्षण

जस्ता

जस्ते की कमी से पौधों की बढ़वार धीमी पड़ जाती है। इसकी कमी के लक्षण नई पत्तियों पर दिखाई देते हैं। पत्तियों की शिराओं के बीच का भाग पीला पड़ जाता है बाकी हिस्सा हरा रहता है। जस्ते की कमी से ग्रसित पत्तियों का आकार छोटा रह जाता है व छोटी-छोटी पत्तियों का गुच्छा बन जाता है। हल्की बलुई क्षारीय मृदा में जस्ते की कमी होती है। नाइट्रोजन व फॉस्फोरस उर्वरक के अधिक अनुप्रयोग से भी मिट्टी में जस्ते की कमी हो जाती है।

जस्ते की कमी के लक्षण

मृदा एवं पत्ती परीक्षण

मृदा जांच तथा पत्तियों का परीक्षण मिट्टी व पौधों में उपलब्ध पोषक तत्वों के स्तर को सुनिश्चित करता है। यह पोषक तत्वों की मानक आवश्यकता का निर्धारण करता है तथा पोषक तत्वों से जुड़े विकारों की पहचान करने में भी सहायक है।

मृदा जांच हेतु 0-15 सेंमी. तथा 15-30 सेंमी. की गहराई से मिट्टी के नमूने लेने चाहिए। इन नमूनों की प्रयोगशाला में विशेषज्ञों की मदद से जांच करवानी चाहिए। यह जांच 2-3 साल के अन्तराल में करवानी चाहिए ताकि फलत में निरन्तरता कायम रहे। पत्ती जांच के लिए, नमूना, पौधों की चारों दिशाओं में फैली व 6-7 फीट की ऊंचाई वाली शाखाओं के बीच से 4-5 महीने की आयु की पुरानी पत्तियों से लें। चयनित शाखाओं के शीर्ष से पत्रक का दूसरा तथा तीसरा जोड़ा जोकि स्वस्थ व परिपक्व हो, उसी को चुनना चाहिए। पत्तियों का नमूना फरवरी-मार्च (जब फूल के गुच्छे विकसित हो जाएं) में लेना चाहिए।

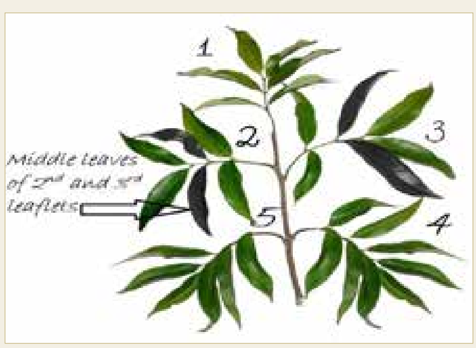

पत्ती जांच के लिए नमूना

इस प्रकार मृदा तथा पत्तियों के विश्लेषण के आधार पर उर्वरक की मात्रा की संस्तुति की जाती है।

सारणी-1: लीची के वृक्षों में खाद एवं उर्वरक की अनुमोदित मात्रा				
पौधों की आयु (वर्ष)	**यूरिया (ग्राम/वृक्ष)**	**सिंगल सुपर फॉस्फेट (ग्राम/वृक्ष)**	**म्यूरेट ऑफ पोटाश (ग्राम/वृक्ष)**	**गोबर की खाद (किलोग्राम/वृक्ष)**
1-3	150-500	200-600	60-150	10-20
4-6	500-1000	750-1250	200-300	25-40
7-10	1000-1500	1500-2000	300-500	40-50
10 वर्ष से अधिक	1600	2250	600	60

लोहे की कमी के लक्षण

लोहा

लोहे की कमी से नई पत्तियों का रंग पीला पड़ने लगता है। धीरे-धीरे पत्तियों की शिराएँ भी पीली पड़ जाती हैं तथा प्रभावित पत्तियां पारदर्शी हो जाती हैं। ग्रसित पौधों की पादप वृद्धि पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। आमतौर पर लोहे की कमी क्षारीय तथा अधिक चूने वाली मृदा में होती है।

बोरॉन

इस सूक्ष्म तत्व की कमी होने पर पत्तियों का आकार छोटा हो जाता है तथा धीरे-धीरे ग्रसित पत्तियां एवं शीर्ष कलिकाएँ सूख जाती हैं। इसकी कमी से पराग क्षमता प्रभावित होती है, जिसका फलत पर बुरा असर पड़ता है। ग्रसित वृक्षों में फल सड़ने की समस्या भी बढ़ जाती है। प्रभावित फल टेढ़े-मेढ़े व छोटे आकार के रह जाते हैं एवं फल फटने की समस्या से गुणवत्ता बुरी तरह क्षतिग्रस्त

बोरॉन की कमी के लक्षण

होती है। बोरॉन की कमी हल्की बलुई मृदा, अधिक चूने वाली मृदा तथा पोटेशियम उर्वरक के अधिक अनुप्रयोग से होती है।

तांबा

तांबे की कमी से नई शाखाएँ ऊपरी ओर से सूखने लगती हैं तथा प्रभावित पत्तियों का आकार छोटा रह जाता है। पत्तियों की शिराओं के बीच का भाग हल्का हरा व पीला पड़ने लगता है। गम्भीर अवस्था में ग्रसित पत्तियों के किनारे नीचे की ओर मुड़ जाते हैं। इसकी कमी से लीची के वृक्षों में फल झड़ने लगते हैं, जिससे उत्पादन में गिरावट होती है। क्षारीय तथा अधिक चूने वाली मृदा में इसकी कमी होती है। मिट्टी में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व जस्ते के अधिक स्तर के कारण भी तांबे की उपलब्धता घट जाती है।

तांबे की कमी के लक्षण

मैंगनीज

आमतौर पर लीची के वृक्षों में मैंगनीज कम होती है, परन्तु हल्की बलुई मृदाओं में मैंगनीज की कमी बढ़ जाती है। मैंगनीज की कमी से पत्ती के मध्य भाग की शिराओं के बीच का हिस्सा पीला हो जाता है। धीरे-धीरे पत्तियों के सिरे व आधार भी पीले पड़ने लगते हैं तथा पत्ती सूखकर झड़ जाती हैं। ग्रसित पत्तियों की ऊपरी सतह पर बैंगनी चमक दिखाई देती हैं। प्रभावित वृक्ष की शाखाएं सूख जाती हैं तथा पौधों की पादप वृद्धि धीमी पड़ जाती है।

मैंगनीज की कमी के लक्षण

पोषण प्रबंधन

लीची के पेड़ के विकास की विभिन्न अवस्थाओं में पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। पोषक तत्वों की कमी के प्रतिकूल प्रभावों को रोकने तथा गुणवत्ता उत्पादन हेतु खाद उर्वरकों की मात्रा का निर्धारण अनिवार्य है।

सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग

सामान्यतौर पर लीची के बागों में सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे-जस्ता, तांबा, मैंगनीज तथा बोरॉन की कमी आ जाती है। ऐसी परिस्थितियों में इन तत्वों का पर्णीय छिड़काव लाभदायक पाया गया है। छिड़काव हेतु सूक्ष्म तत्वों के स्रोत व अनुमोदित मात्रा का विवरण सारणी-2 में दिया गया है।

खाद देने का समय

लीची के पौधों में अच्छी बढ़वार व फलत हेतु खाद एवं उर्वरकों का निर्धारण आवश्यक है। वानस्पतिक वृद्धि के लिए पौधों को शैशवावस्था से ही पर्याप्त मात्रा में खाद देनी चाहिए। इससे पौधों के साथ-साथ मृदा के स्वास्थ्य में भी सुधार होता है। फलन की प्रारम्भिक अवस्था में यूरिया को तीन भागों में बांटकर, एक भाग फरवरी-मार्च, दूसरा भाग जून-जुलाई व तीसरा भाग अगस्त-सितम्बर के महीने में देना लाभदायक होता है। फलन की मुख्य अवस्था में यूरिया को दो भाग में बांट देना चाहिए। पहला भाग मध्य फरवरी व दूसरा भाग अप्रैल (फल विकास के समय) में देना चाहिए।

इसके अतिरिक्त गोबर की खाद, सिंगल सुपर फॉस्फेट व म्यूरेट ऑफ पोटाश की पूरी मात्रा दिसम्बर के महीने में देनी चाहिए। पौधों में किसी सूक्ष्म तत्व की कमी होने पर पर्णीय छिड़काव करें।

विधि

लीची की खुराक खींचने वाली जड़ें 60-90 सेंमी. की गहराई पर होती हैं। इनका अधिकांश फैलाव वृक्ष के घेरे के अन्तर्गत होता है। इसलिए उर्वरक या खाद प्रमुख तने से 1 मीटर हटकर शेष घेरे के अन्तर्गत देनी चाहिए। यदि मिट्टी में नमी न हो, तो खाद देने के उपरांत हल्की सिंचाई करनी चाहिए। ■

सारणी-2 : सूक्ष्म पोषक तत्वों के स्रोत तथा छिड़काव हेतु संस्तुत मात्रा व समय		
सूक्ष्म पोषक तत्व	**मात्रा तथा सूक्ष्म तत्व का स्रोत**	**छिड़काव का समय**
जस्ता	0.2 प्रतिशत जिंक सल्फेट	फरवरी-मार्च
तांबा	0.2 प्रतिशत कॉपर सल्फेट	फरवरी-मार्च
मैंगनीज	0.2 प्रतिशत मैंगनीज सल्फेट	सितम्बर-अक्टूबर
बोरॉन	0.2 प्रतिशत बोरॉन अम्ल	फल बनने के बाद (अप्रैल-मई)

खस-खस की वैज्ञानिक खेती

सन्तोष चौधरी*, नन्द किशोर जाट** और **सुधीर कुमार*****

खस, भारतीय मूल की एक सगंधीय बहुवर्षीय घास है। इसे आमतौर पर खस-खस घास के नाम से भी जाना जाता है। भारत में इसकी खेती राजस्थान, असोम, बिहार, उत्तरप्रदेश, केरल, कर्नाटक, तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश और मध्यप्रदेश में की जाती है। व्यावसायिक फसल होने के साथ-साथ यह मृदा अपरदन को रोककर मिट्टी की नमी को बनाए रखने में मदद करती है तथा मिट्टी के भौतिक गुणों में सुधार करती है। इस घास की ऊंचाई 2-3 मीटर, पत्तियों की लम्बाई 120-150 सेंमी. और चौड़ाई 0.8 सेंमी. होती है। इस घास की जड़ें 2-4 मीटर गहराई तक बढ़ती हैं। इसकी खेती मुख्यतौर पर इसकी जड़ों में पाये जाने वाले सुगन्धित तेल के लिए की जाती है। इस तेल के मुख्य रासायनिक घटक-बेंजोइक एसिड, वेटिवरोल, फरफ्यूरोल और वेटिवीन होते हैं।

खस का सुगन्धित तेल मुख्यत: शरबत, पान मसाला, खाने के तम्बाकू, इत्र, साबुन तथा अन्य सौन्दर्य प्रसाधनों के उत्पादन में उपयोग किया जाता है। इसके अलावा इसकी सूखी जड़ों से चटाई, हस्तचालित पंखे, अगरबत्तियां एवं टोकरियां भी बनाई जाती हैं। इसकी सूखी हुई जड़ें कपड़ों में सुगन्ध के लिए भी उपयोग की जाती हैं। खस का इस्तेमाल आयुर्वेद चिकित्सा में औषधि के रूप में भी होता है।

जलवायु एवं भूमि

खस की अच्छी पैदावार के लिए शीतोष्ण एवं समशीतोष्ण जलवायु उपयुक्त रहती है। जड़ों की अच्छी वृद्धि के लिए 30-40 डिग्री सेल्सियस तापमान एवं 200-250 सें.मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्र बेहतर होते हैं। इसकी खेती उपजाऊ दोमट से लेकर अनुपजाऊ पठारी मृदा में भी की जा सकती है। इसकी अच्छी पैदावार के लिए रेतीली दोमट मिट्टी, जिसका पीएच मान 8.0 से 9.0 के मध्य हो, उपयुक्त होती है। इसकी खेती ऐसे स्थानों में की जा सकती है, जहाँ वर्षा के दिनों में कुछ समय के लिए पानी इकट्ठा हो जाता है तथा अन्य कोई फसल लेना सम्भव नहीं होता है।

खेत की तैयारी

इसकी अच्छी पैदावार के लिए रोपण से पहले खेत की 2 से 3 बार गहरी जुताई करें एवं देसी घास की जड़ों को हटा देना चाहिए। आखिरी जुताई के समय अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद 10 से 15 टन हैक्टर की दर से अच्छी तरह मिट्टी में मिला देनी चाहिए।

प्रवर्धन एवं रोपाई

खस का प्रवर्धन बीज तथा कल्ले से किया जा सकता है, लेकिन व्यावसायिक स्तर पर खस का प्रवर्धन कल्ले के माध्यम से ही किया जाता है। स्लिप्स तैयार करने के लिए एक वर्ष पुराने पौधे के तने निकालकर उसमें से एक-एक कलम अलग कर ली जाती है, इन कलमों को ''कल्ले'' कहते हैं। कल्ले

उन्नत किस्में

खस की उन्नत किस्मों में पूसा हाइब्रिड-7, हाइब्रिड-8, सुगंधा, के एच्-8, के एच्-40, औ डी वी-3, के. एस.-1, धारिणी, केशरी, गुलाबी, सीमैप के एस-2, सीमैप के एस-15, सीमैप के एस-22 और सिम-समृद्धि इत्यादि हैं।

*सहायक प्राध्यापक (उद्यान विज्ञान) कृषि महाविद्यालय, कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान; **वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान)-भाकृअनुप-केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान); ***वैज्ञानिक (पादप कार्यिकी) पादप कार्यिकी सम्भाग, भाकृअनुप- भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

खस-खस के स्वस्थ बीज

तैयार करते समय हरी पत्तियों को काटकर अलग कर देना चाहिए साथ ही नीचे की सूखी पत्तियों एवं लम्बी जड़ों को काटकर अलग कर देना चाहिए। इनकी लम्बाई 15 से 20 सेंटीमीटर रखनी चाहिए। खेत तैयार होने के तुरन्त बाद रोपाई प्रारम्भ कर देनी चाहिए। रोपाई के तुरन्त बाद सिंचाई अति आवश्यक है तथा असिंचित दशा में रोपण के लिए सबसे उपयुक्त समय मानसून की शुरुआत (जून से अगस्त) होता है। कल्ले को 8 से 10 सेंटीमीटर की गहराई पर 60 सेंटीमीटर पंक्ति की दूरी एवं 45 सेंटीमीटर पौधे-से-पौधे की दूरी पर रोपित किया जाता है। एक हैक्टर क्षेत्रफल की रोपाई के लिए 40,000 कल्ले पर्याप्त रहते हैं।

खाद एवं उर्वरक

खस-खस की जड़ों का फैलाव अधिक होने के कारण पौधे मृदा से अधिक मात्रा में पोषक तत्व लेते हैं। इसलिए खाद एवं उर्वरकों का उपयोग करने से तेल की उपज में वृद्धि होती है। खस-खस की फसल में 120 किलोग्राम नाइट्रोजन, 60 किलोग्राम फॉस्फोरस एवं 40 किलोग्राम पोटाश प्रति हैक्टर प्रति वर्ष डालना चाहिए। खेत की तैयारी के समय फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी खुराक दी जाती है और 3 महीने के अन्तराल में नाइट्रोजन की खुराक 2 बराबर भागों में दी जाती है।

सिंचाई

खस-खस के पौधों को सामान्यत: अधिक पानी की आवश्यकता नहीं होती है। हालांकि शुष्क क्षेत्रों में अधिक उपज प्राप्त करने के लिए 8 से 10 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। ऐसे क्षेत्रों में जहाँ वर्षा अच्छी होती है एवं सालभर नमी बनी रहती है, सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

निराई एवं गुड़ाई

इसकी रोपाई के 35-40 दिनों बाद खरपतवार नियंत्रण किया जाना चाहिए। खस-खस का पौधा खेत में एक बार अच्छी तरह स्थापित हो गया तो फिर खेत में खरपतवारों की बढ़वार नहीं हो पाती है। खरपतवारों को समाप्त करने के लिए 2-3 बार निराई एवं गुड़ाई की आवश्यकता होती है। इससे प्रकाश, नमी और पोषक तत्वों के लिए फसल के पौधों के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं हो पाती है और उपज में वृद्धि होती है।

जड़ों की खुदाई

रोपाई के 12-14 माह उपरांत इसकी जड़ें खुदाई योग्य हो जाती हैं। जड़ों की खुदाई प्रारम्भ करने से पहले पौधे के जमीन से 35-40 सेंटीमीटर ऊपरी भाग को काट दिया जाता है। जड़ों की खुदाई का सर्वोत्तम

रोपाई हेतु खस-खस के कल्ले

समय दिसम्बर होता है क्योंकि इस माह में तेल की मात्रा जड़ों में अधिक पाई जाती है। जिन स्थानों पर ठंड अधिक होती है वहाँ पर जड़ों की खुदाई फरवरी माह में करना उचित रहता है। जड़ों की खुदाई करते समय खेत में हल्की नमी रहने से खुदाई में आसानी होती है। जड़ों की खुदाई ट्रैक्टर द्वारा मिट्टी पलटने वाले उपकरण से 40-45 सेंटीमीटर गहराई तक सुविधापूर्वक की जा सकती है। जड़ों की खुदाई करने के बाद उन्हें 7-10 दिनों के लिए छाया में सुखाना चाहिए।

उपज

जड़ों की औसतन उपज 15-20 क्विंटल प्रति हैक्टर होती है जिनमें सुगन्धित तेल की मात्रा 0.2 से 0.5 प्रतिशत तक पाई जाती है। इस प्रकार प्रति हैक्टर 20-25 किलोग्राम सुगन्धित तेल प्राप्त किया जा सकता है। सुगन्धित तेल का उत्पादन खस घास की प्रजाति, जड़ों की आयु, आसवन की विधि एवं अवधि पर निर्भर करता है। इस फसल से लगभग 1,50,000 से 1,80,000 रुपये प्रति हैक्टर का शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

कीट एवं रोग नियंत्रण

खस-खस की फसल पर रोग एवं कीट का प्रकोप कम देखा गया है, परन्तु बरसात के मौसम में कुछ कीटों एवं रोगों का प्रकोप होता है। खस की फसल में कभी-कभी पत्ती धब्बा रोग का आक्रमण देखने को मिलता है। कुछ कीट, जैसे दीमक का प्रकोप रोपाई के तुरन्त बाद दिखाई पड़ता है जिसकी रोकथाम के लिए 500-600 मिली. क्लोरोपायरीफॉस प्रति हैक्टर पानी के घोल का छिड़काव करना चाहिए। ■

आसवन एवं तेल का भण्डारण

खस की जड़ों से सुगन्धित तेल का निष्कर्षण वाष्प आसवन विधि द्वारा किया जाता है। जड़ों की खुदाई के तुरन्त बाद अथवा 1-2 महीने के पश्चात भी तेल निकाला जा सकता है। आसवन से पहले खस की जड़ों को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लेना चाहिए। इसकी जड़ों से सामान्यत: तेल निकालने के लिए 14-16 घंटे तक जड़ों का आसवन करना उपयुक्त रहता है। खस के सुगन्धित तेल में नमी, हवा और सूर्य के प्रकाश का तेल की गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इसीलिए तेल को स्टील या एल्युमिनियम के हवाबंद पात्र में एकत्र करके किसी छायादार स्थान पर रखना चाहिए तथा तेल को जिस कंटेनर में रखा जाए वह स्वच्छ और जंग से मुक्त होना चाहिए।

खस का पौधा

खस की जड़ें

सुगन्धित तेल

लहसुन प्रसंस्करण की बढ़ती महत्ता

रितु सिंह* और **पी के गुप्ता****

वर्तमान में भारत में प्रसंस्करित खाद्य पदार्थों की मांग निरंतर बढ़ती जा रही है। हमारे देश में कृषि उत्पादों के प्रसंस्करण से जहाँ मात्र 13 प्रतिशत आय होती है, वहीं चीन में यह 25 प्रतिशत है। दूसरी ओर फल-सब्जी उत्पादन में भारत का चीन के बाद दूसरा स्थान है, लेकिन प्रसंस्करण में काफी पीछे है। देश में कटाई उपरांत प्रसंस्करण तकनीकियों एवं उचित साधनों को न अपनाने के कारण 25-30 प्रतिशत तक फल व सब्जियों का नुकसान हो रहा है। इससे बचने के लिए किसान स्वयं सहायता समूह अथवा सहकारी स्तर पर फल-सब्जियों का प्रसंस्करण तथा विपणन करें तो इस नुकसान को कम करने के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों में बढ़ोतरी हो सकती है। इस क्षेत्र में कृषि विज्ञान केंद्र, दिल्ली भी अहम् भूमिका निभा रहा है। यह केंद्र फल-सब्जी के प्रसंस्करण में व्यावसायिक प्रशिक्षण आयोजित कर किसानों, युवकों, युवतियों को आत्मनिर्भर बनाने के निरंतर अवसर प्रदान कर रहा है। यदि ग्रामीण वर्ग को खाद्य प्रसंस्करण की सही जानकारी एवं प्रसंकरण इकाइयां लगाने का विस्तृत ज्ञान होगा तो कृषि उत्पादों का मूल्यसंवर्धन और आय के नए स्रोत बनेंगे परिणामतः आर्थिक स्तर में सुधार होगा। इसी के साथ पौष्टिक फल व सब्जियों का वर्ष भर सेवन संभव होगा।

आजकल विदेशी मुद्रा अर्जन की दृष्टि से कृषि उत्पादों में लहसुन का महत्वपूर्ण स्थान बनता जा रहा है। भारतीय मसाला बोर्ड के आंकड़ों के अनुसार, भारत ने वर्ष 2020 में लगभग 12750 टन लहसुन का निर्यात किया है तथा इससे 1270 लाख रुपये विदेशी मुद्रा का अर्जन भी किया है। यह एक बहुपयोगी उद्यानिकी उत्पाद है जो न केवल एक मसाले के रूप में बल्कि औषधि के रूप में भी उपयोगी है। आमतौर पर यह माना जाता है कि लहसुन एक अमृत रसायन है क्योंकि इसमें सल्फरयुक्त यौगिकों की मात्रा काफी होती है जिससे इसकी गंध तीखी होती है। इसमें पाये जाने वाले तत्वों में एलिसीन नामक एंजाइम होता है जो एंटी बैक्टीरियल के रूप में जाना जाता है।

लहसुन के फायदे

लहसुन एंटी बैक्टीरियल व एंटी फंगल के रूप में विशेषतौर पर उपयोग की जानी वाली औषधि है। वायरल, फूड पॉइजनिंग व फंगल इन्फेक्शन में इसके सेवन से फायदा होता है।

हमारे देश में लहसुन का संग्रहण घरेलू स्तर पर ही किया जाता है और इसे लगभग 6-8 महीने तक संग्रहित करके रखते हैं। संग्रहण के दौरान 25-30 प्रतिशत तक नुकसान हो जाता है। यह नुकसान संग्रहण के दौरान कलियों के सूखने तथा उन पर भूरी तथा काली फफूंद के कारण होता है। लहसुन की छिलाई के पश्चात इसका प्रसंस्करण अति आवश्यक है क्योंकि एंजाइम क्रियाओं के कारण इसका रंग भूरा और वाष्पीकरण से इसका तेल उड़ने की आशंका रहती है। यदि लहसुन के विभिन्न मूल्य संवर्द्धित उत्पाद जैसे लहसुन फ्लैक्स, पाउडर, पेस्ट और अचार आदि प्रसंस्करण द्वारा बनाये जायें तो इनका संग्रहण भी आसानी से संभव है। इस प्रकार कटाई के बाद होने वाले नुकसान को कम करने के साथ-साथ 25-30 प्रतिशत अधिक मुनाफा अर्जित किया जा सकता है। लहसुन का प्रसंस्करण कर बनाये गए उत्पादों जैसे पेस्ट, सूखी कलियाँ, पाउडर, तेल, अचार आदि की मांग देश-विदेश में निरंतर बढ़ती जा रही है।

लहसुन के फायदे

- एंटी बैक्टीरियल होने के कारण त्वचा सम्बन्धी रोगों के निष्कासन में भी यह सहायक है
- ह्दय बीमारी के लिए लहसुन रामबाण औषधि है।
- लहसुन में मौजूद एलिसीन रक्त में ट्राइग्लिसराइड को कम करने में मदद करता है जो कोलेस्ट्रॉल को कम करने में सहायक होता है।

लहसुन प्रसंस्करण क्रियाएं

लहसुन प्रसंस्करण द्वारा विभिन्न उत्पाद जैसे फ्लैक्स, पाउडर, पेस्ट, चटनी, तेल, अचार आदि बनाये जाते हैं। प्रसंस्करण के लिए सबसे पहले इसके कंदों को तोड़ना एवं अलग करना आवश्यक है। पाउडर और फ्लैक्स बनाने के लिए कलियों की छिलाई, कटाई, सुखाई व पिसाई, पेस्ट बनाने के लिए लहसुन की छिलाई के बाद गीली कलियों की पिसाई और लहसुन का तेल प्राप्त करने के लिए कलियों का आसवन (डिस्टिलेशन) जैसी प्रमुख क्रियाएं सम्मिलित हैं।

कलियों को अलग करना: परंपरागत तरीके से कंदों से कलियों को हाथों तथा पैरों से दबाकर अलग करते हैं। इस काम में काफी समय तथा मेहनत लग जाती है। इस कारण अब कलियों को पृथक (अलग) करने के लिए लहसुन कली पृथक्करण यंत्र का विकास किया जा चुका है। इस मशीन द्वारा एक घंटे में 800 किलोग्राम लहसुन कलियों के पृथक्करण का कार्य किया जा सकता है तथा कलियों को कोई नुकसान भी नहीं होता है। अतः बीज के रूप में बुआई के लिए भी इसका उपयोग किया जा सकता है। यह यंत्र महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्व विद्यालय, उदयपुर द्वारा विकसित किया गया है और इस मशीन को चलाने के लिए आधा हॉर्स पावर की मोटर की आवश्यकता होती है।

कली पृथक्करण यंत्र

*विशेषज्ञ (गृह विज्ञान) एवं **अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केंद्र, दिल्ली

कलियों की छिलाई

लहसुन की कलियों की छिलाई का काम बहुत कठिन तथा समय लेने वाला होता है। परम्परागत तरीकों में कलियों को थोड़ा सुखाकर बोरों पर रगड़कर छिलका हटाया जाता है। लहसुन में पाए जाने वाले तेल की अधिकतम मात्रा छिलके की महीन परत के नीचे होती है। अतः छिलाई के दौरान हुई थोड़ी सी भी असावधानी इन महत्वपूर्ण तेलों का ह्रास करके उत्पाद की गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव डालती है। इसके लिए स्वचालित छिलाई यंत्र विकसित किये गए हैं, जिनकी क्षमता 15-20 किलोग्राम प्रति घंटा

लहसुन पेस्ट

लहसुन का पेस्ट बनाने के लिए छिली हुई कलियों को पीस कर इसमें परिरक्षक के रूप में 0.5 प्रतिशत सिट्रिक एसिड, 0.05 प्रतिशत सोडियम बेंजोएट व 1.5 प्रतिशत नमक मिलाया जाता है। लहसुन व अदरक का भी पेस्ट बनाया जा सकता है। इसके लिए 35 भाग छिला लहसुन, 55 भाग छिली अदरक व 10 भाग नमक को मिलाकर एक साथ पीसा जाता है। इसमें परिरक्षक के रूप में 1.0 प्रतिशत सिट्रिक एसिड का घोल तथा 0.1 प्रतिशत सोडियम बेंजोएट मिलाया जाता है जिससे पी एच मान अम्लीय (4.5 से 5.0) हो जाता है तथा सूक्ष्मजीवों की वृद्धि रुक जाती है।

लहसुन पेस्ट

निर्जलित लहसुन के टुकड़े

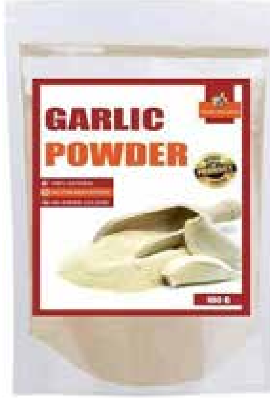

लहसुन पाउडर

आंकी गई है। इनसे छिलाई करने पर तेल का ह्रास नहीं होता है। छिलाई के तुरंत बाद इसका प्रसंस्करण अति आवश्यक है क्योंकि एंजाइम क्रियाओं से लहसुन का रंग भूरा होने एवं वाष्पीय तेल के उड़ने की आशंका अधिक रहती है।

लहसुन उत्पाद

लहसुन फ्लैक्स एवं पाउडरः लहसुन का फलैक्स एवं पाउडर बनाने के लिए छिलका उतारी हुई लहसुन की कलियों को 4-6 मिलीमीटर मोटाई के टुकड़े करके सौर ऊर्जा से सुखाने वाली मशीन (शुष्कक) या बिजली से चलने वाली मशीन (शुष्कक) में सुखाया जाता है। भारतीय मानक (बिस): 5452:1969 के निर्देशानुसार लहसुन को सुखाने से पहले किसी भी प्रकार के रसायन या रंग बढ़ाने वाले पदार्थ आदि से उपचारित करना वर्जित है। सुखाने से पहले खराब या रोगग्रस्त कलियों को अलग कर देना चाहिए। सामान्यतया, सौर शुष्कक में यह 5-6 दिन और मशीन शुष्कक में 10-12 घंटे में सूख जाता है। मशीन का अधिकतम तापमान 55 डिग्री सेल्सियस रखा जाता है। सूखे हुए लहसुन में 5 प्रतिशत नमी रहनी चाहिए। इस प्रकार प्राप्त सूखे लहसुन टुकड़ों को फ्लैक्स के रूप में पैकिंग करते हैं। इन फ्लैक्स से उपयोग तथा मांग के आधार पर इसकी पिसाई करके पाउडर बना सकते हैं। इसके पाउडर की गुणवत्ता पर आर्द्रता एवं तापक्रम का काफी प्रभाव पड़ता है। इसकी पिसाई कम तापक्रम पर तथा पैकिंग हवा और नमीरोधी पॉलिथीन या कांच के पात्रों में करनी चाहिए। इसलिए उच्च गुणवत्ता का पाउडर बनाने के लिए कम ताप वाली चक्की (क्रायोजेनिक पिसाई चक्की) का प्रयोग करना चाहिए। पाउडर की आवश्यकतानुसार सुरक्षित पैकेजिंग करके उचित रूप से भंडारित कर विपणन किया जा सकता है। लहसुन को सीधे सुखा कर, छिलका निकालकर तथा पाउडर बनाकर पैकिंग कर सकते हैं। इससे समय तथा मेहनत दोनों की बचत होती है लेकिन यह विधि पाउडर बनाने में प्रयोग में ली जा सकती है। 10 किलोग्राम ताजे लहसुन से लगभग 2.8 से 3.0 किलोग्राम पाउडर प्राप्त किया जा सकता है तथा अधिक मुनाफा अर्जित किया जा सकता है।

लहसुन अचार

लहसुन का अचार सिरका या तेल में बनाया जाता है। लहसुन का सिरका वाला अचार बनाने के लिए ताजी कलियों को 2-3

लहसुन अचार

मिनट ब्लांच करके ठंडा कर प्रतिकिलो लहसुन को 100 ग्राम नमक में मिलाकर रात भर छोड़ दें और अगले दिन सिरके में डाल कर कांच के जार में भर दें। छिली हुई कलियों को तेल में मसाले के साथ पकाकर मिक्स या लहसुन का अचार बनाया जा सकता है। ■

लहसुन कली छिलाई यंत्र

जनजातीय क्षेत्र में कुल्थी की खेती

अमितेश कुमार सिंह*, **राकेश कुमार****, **सूर्य भूषण*****, **रवि शंकर****** और **अमित कुमार सिंह*******

कुल्थी भारत की एक महत्वपूर्ण फसल है। इसका दाना मानव के आहार में दाल और पशु के लिये दाने व चारे के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसको हरी खाद के रूप में भी उपयोग करते हैं। इसमें 22% प्रोटीन, 58% कार्बोहाइड्रेट के अलावा आवश्यक पोषक तत्व जैसे-फॉस्फोरस, कैल्शियम, लौह तत्व और विटामिन ए प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। पेचिश, कब्ज, अस्थमा, ब्रोंकाइटिस, मूत्र समस्याओं, पीलिया, बवासीर, गुर्दे की पथरी और पित्ताशय की पथरी में कुल्थी का चूर्ण या दाल बनाकर औषधि के रूप में सेवन करना बहुत लाभदायक होता है। यह शरीर में विटामिन 'ए' की पूर्ति कर पथरी को रोकने में मददगार है। कुल्थी को गरीबों की दाल कहा जाता है।

भारत में कुल्थी की खेती कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, ओडिशा, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, झारखण्ड, पश्चिम बंगाल, उत्तराखण्ड और हिमाचल प्रदेश में की जाती है। देश में कुल्थी का क्षेत्रफल 2.17 लाख हैक्टर है। उत्पादन 1.11 लाख टन व औसत उत्पादकता 512 कि.ग्रा./है. है। सर्वाधिक क्षेत्रफल व उत्पादन की दृष्टि से कर्नाटक (26.7% व 25.7%), ओडिशा (19.5% व 15.5%) तथा छत्तीसगढ़ (19.3% व 13.3%) राज्यों का स्थान आता है। उत्पादकता में बिहार (920 कि.ग्रा./है.), पश्चिम बंगाल (796 कि.ग्रा./है.) व झारखण्ड (702 कि.ग्रा./है.) राज्यों का स्थान आता है।

पोषण सुरक्षा, भूमि और जल संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग, सतत कृषि विकास, पर्यावरण सुधार, रोजगार सृजन, आय वृद्धि के स्रोत और गरीबी उन्मूलन के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए इस फसल का विविधीकरण प्रभावी रणनीति हो सकती है। देश में विविध कृषि-जलवायु परिस्थितियों के कारण, वर्ष भर बड़ी मात्रा में यह फसल उगाई जाती है। इसकी उपयोगिता के कारण झारखण्ड राज्य के जनजातीय किसान इसकी खेती में रुचि ले रहे हैं।

जलवायु एवं तापक्रम : इसकी खेती उष्णकटिबंधीय जलवायु वाले प्रदेशों में की जा सकती है। कुल्थी के पौधे सूखे के प्रति सहनशील होते हैं। इसकी उपयुक्त वृद्धि के लिये हल्की गर्म, शुष्क जलवायु अच्छी रहती है। इसकी खेती के लिए समुद्र तल से 1000 मीटर तक की ऊंचाई वाले भूभाग ही उपयुक्त होते हैं। इसकी सफलतम खेती

फसल विविधीकरण के अंतर्गत कुल्थी का परीक्षण

सारणी 1 : कुल्थी की उन्नत किस्में

क्र. सं.	किस्म	पकने की अवधि (दिनों में)	औसत उत्पादन (क्विंटल/है.)	संस्तुति क्षेत्र
1.	बिरसा कुल्थी-1,2,3	95-100	12-15	बिहार, झारखण्ड
2.	बी.आर.-10	100-105	10-12	बिहार, झारखण्ड
3.	मधु	100-105	10-12	बिहार, झारखण्ड
4.	प्रताप कुल्थी-2	110	15	गुजरात, राजस्थान, छत्तीसगढ़
5.	के.एस.-2,ए.के.- 21	105-110	12	राजस्थान
6.	वी.एल.गहत-1,8,10	120-130	15	उत्तराखंड
7.	जी.एच.जी.-5	100-115	-	सभी राज्यों के लिए
8.	डी.बी.-7	90-100	15	आंध्र प्रदेश, तेलंगाना
9.	सी.आर.एच.जी.-19, 22	95-105	10-14	दक्षिण भारत
10	छत्तीसगढ़ कुल्थी-2, 3	105	10-12	छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश
11	एस.-27,एस.-8	95-110	12-15	ओडिशा
12	एच.पी.के.-4,बी.एल.जी. 1	95	12	हिमाचल प्रदेश
13	एच.एच.-2, के.बी.एच.-1	90-105	12-16	कर्नाटक

*वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान), ग्रामीण विकास ट्रस्ट-कृषि विज्ञान केन्द्र,चकेश्वरी फार्म, गोड्डा (झारखण्ड); **एस.आर.एफ., वरिष्ठ वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान) फसल अनुसंधान विभाग, पूर्वी क्षेत्र के लिए, आई. सी. ए. आर. अनुसंधान परिसर, पी.ओ.-बिहार, पशु चिकित्सा महाविद्यालय परिसर, पटना(बिहार); *** वैज्ञानिक (पादप संरक्षण); ****वरीय वैज्ञानिक-सह-प्रधान, वैज्ञानिक (प्रसार); *****शोध सहायक, कृषि अर्थशास्त्र विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)

के लिए वार्षिक वर्षा 80 सेंमी या कम वर्षा वाले क्षेत्रों में उगा सकते हैं। पौधों की वृद्धि के लिये तापक्रम 25 से 30 सेन्टीग्रेड और सापेक्षिक आर्द्रता 50-80% के बीच होनी चाहिए। फसल की प्रारम्भिक अवस्था में भारी वर्षा से जड़ों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण की ग्रंथियां बनना प्रभावित होती हैं क्योंकि मृदा में वायु संचार कम होता है।

मिट्टी की तैयारी: इसके लिए उचित जल निकासी वाली उपजाऊ भूमि की जरूरत होती है। इसकी खेती से अधिक उत्पादन लेने के लिए इसे बलुई दोमट मिट्टी में उगाना सबसे उपयुक्त माना जाता है। इसकी खेती के लिए भूमि का पी.एच.मान सामान्य होना चाहिए।

बुआई का समय: फसल बोने का समय जुलाई अंत से अगस्त माह होता है। चारे के लिये बोई गई फसल की बुआई जून-अगस्त में करते हैं। उत्तरी क्षेत्र में इसको खरीफ फसल के रूप में लेते हैं। पश्चिम बंगाल में इसकी बुआई का समय अक्टूबर-नवम्बर है।

बीजदर व बीजोपचार: सामान्यत: हरी खाद/हरे चारे की बुआई छिटकवां विधि से 40 कि.ग्रा./है. और कतार में बुआई करने पर दाने के लिये बोई गई फसल की बीज दर 25-30 कि.ग्रा./है. पर्याप्त होती है। खरीफ फसल में कतार से कतार की दूरी 40-45 सें. मी. व रबी फसल में कतार से कतार की दूरी 25-30 सें.मी. रखते हैं और पौधे से पौधे की दूरी 5 सें.मी. रखनी चाहिए। बुआई से पूर्व बीजों को फफूंदनाशी दवा कार्बेन्डाजिम 2 ग्रा./कि.ग्रा. बीज दर से उपचारित करना चाहिए। इसके बाद राइजोबियम व पी.एस.बी.कल्चर की 5-7 ग्रा./कि.ग्रा. बीजदर से उपचार करना चाहिए।

बेलतुप्पा गांव में समूह अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन के अन्तर्गत कुल्थी फसल का निरीक्षण

उर्वरक प्रबंधन: बुआई के समय 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन व 30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस/है. की दर से आधार उर्वरक के रूप में बीज से नीचे देना चाहिए।

कटाई-गहाई एवं भण्डारण

जब फसल की फलियाँ ऊपर से पीली पड़ने लगें तब कटाई कर लेनी चाहिए क्योंकि इस समय पौधों के निचले एवं मध्य भाग में लगी फलियाँ लगभग पक जाती हैं। कटाई में देरी करने से नीचे की फलियाँ चटकने के कारण उत्पादन में कमी आ जाती है। गहाई के बाद दाने को 3-4 दिन तक धूप में सुखा लेना चाहिए। भण्डारण के समय दाने में 9-10% नमी होनी चाहिए। भण्डारण में कीटों के आक्रमण से बचाने के लिए 2 किलोग्राम सूखी हुई नीम की पत्तियाँ प्रति क्विंटल अनाज में अच्छी तरह मिला कर रखें।

सिंचाई प्रबंधन: फसल में फूल आने से पहले एवं फली में दाना बनते समय सिंचाई अवश्य करनी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण: बुआई के बाद व अंकुरण से पूर्व (0-3 दिन) पेन्डीमिथालिन 0.75-1.0 कि. ग्रा. सक्रिय तत्व को 400-600 ली. पानी में घोल बनाकर प्रति है. का उपयोग करें। इसके बाद हाथ से एक निराई-बुआई के 20-25 दिनों बाद करें।

कीट एवं रोग नियंत्रण

रसचूसक कीट: ये पौधों का रस चूसकर फसल को नुकसान पहुँचाते हैं। इनके नियंत्रण के लिये डायमोथएट 30 ई.सी. को 2 मि.ली./ली. या मिथाइल डेमेटान को 1 मि. ली./ली. पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

फली छेदक व पत्ती भक्षक कीट: इन कीटों के नियंत्रण के लिये क्विनालफॉस का 2 मि.ली./ली. पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

जड़ सड़न: इस रोग से बचाव के लिये बुआई पूर्व बीजों को फफूंदनाशी दवा कार्बेन्डाजिम का 2 ग्रा./कि.ग्रा. बीज दर से उपचार करके बुआई करें।

पीला मोजैक: इसके नियंत्रण के लिये सफेद मक्खियों का नियंत्रण करना चाहिए। इसके लिये डायमेथोएट 30 ई.सी. दवा को 2 मि.ली./ली पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

उपज: उन्नत कृषि तकनीक व उचित प्रबंधन को अपनाकर 8-10 क्विंटल दाने की उपज तथा 18-25 क्विंटल हरा चारा हैक्टर प्राप्त कर सकते हैं।

लाभ का सौदा

कुल्थी की वैज्ञानिक विधि से खेती में कुल लागत रुपये 17200 प्रति हैक्टर आती है। इसका उत्पादन 6-10 क्विंटल दाना/है. होता है और बाजार मूल्य भी किसान को 50 रुपये/कि.ग्रा. दाने का मिल जाता है। इस प्रकार झारखण्ड में जनजातीय किसान अच्छी सस्य क्रिया को अपनाकर 22800 रुपये/है. शुद्ध लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इसको फसल चक्रीकरण और अन्तर्वर्ती या आवरण फसलों के रूप में उगाने से उत्पादकता, मिट्टी की उर्वरता, पर्यावरण में स्थिरता और कीट, मिट्टी कटाव, मिश्रित फसल में उर्वरकों का भी कम उपयोग होता है। इसके कारण विविध फसल प्रणाली अधिक लचीली है और कृषि संबंधी रूप से स्थिर हो जाती है।

समूह अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन, कुल्थी (बिरसा कुल्थी-1)

तकनीक

प्लास्टिक का उद्यानिकी में उपयोग

पंकज नौटियाल*, गौरव पपनै*, नीरज जोशी* और **वरुण सुप्याल***

प्लास्टिक अपने हल्के भार, लंबे स्थायित्व और कम लागत के कारण आज की विकासशील अर्थव्यवस्था और बाजार का सबसे आम विकल्प बना हुआ है। एकल उपयोग प्लास्टिक, पारिस्थितिकी और पर्यावरण के लिए एक गंभीर खतरा है। पर्यावरण को बचाने के लिए एकल उपयोग प्लास्टिक की रिसाइक्लिंग एक चुनौती है। इस कारण से, एकल उपयोग प्लास्टिक का कुछ हद तक, घरों और बगीचों में पुन:उपयोग किया जा सकता है। इस लेख में विशेष रूप से उद्यानिकी के संदर्भ में एकल उपयोग प्लास्टिक के पुन: उपयोग सम्बन्धी कुछ स्वदेशी नवाचारों को व्यक्त किया गया है।

प्लास्टिक कचरा आज की दुनिया में एक अपरिहार्य खतरा बन चुका है, और शहरीकरण में प्रगति के साथ यह समस्या दिनोंदिन बढ़ती ही जा रही है। बढ़ती जनसंख्या भी प्लास्टिक के इस लगातार बढ़ते उपयोग का एक प्रमुख कारक है। एकल उपयोग प्लास्टिक एक डिस्पोजेबल प्लास्टिक है जिसमें केवल एक बार उपयोग की जाने वाली सामग्री शामिल हैं, जैसे प्लास्टिक बैग, पैकेजिंग सामग्री, बोतलें, कटलरी, कप और प्लास्टिक के जार। प्लास्टिक कचरे का असर देश की प्रमुख नदी प्रणालियों में देखा जा सकता है। इस संबंध में एकल उपयोग प्लास्टिक को फिर से उपयोग करने के लिए कुछ पर्यावरण के अनुकूल नवाचार पेश किए जाने चाहिए। कृषि क्षेत्र में एकल उपयोग प्लास्टिक की लंबे समय तक उपयोगिता के लिए कुछ सस्ते, कम लागत, एवं कम रखरखाव आवश्यकता वाले नवाचारों को पेश करके इस चुनौती पर काम किया जा सकता है।

पॉली-विनायल क्लोराइड प्लास्टिक का उपयोग कृषि और बागवानी में किया जाता है जैसे ग्रीनहाउस, टनलिंग, प्लास्टिक मल्चिंग, साइलेज और सिंचाई प्रणाली। कृषि में विशेषकर परिवहन और भंडारण कार्यों में प्लास्टिक का उपयोग निस्संदेह नुकसान को कम करके उच्च और कुशल उत्पादकता को बढ़ावा देता है। किसी भी मौसम में फल और सब्जियां ग्रीनहाउस नर्सरी में उगाई जा सकती हैं और प्लास्टिक की उपयोगिता को बढ़ा सकती हैं। इस लेख में कुछ ऐसी ही विधियों को सूचीबद्ध करने के लिए संक्षिप्त रूप में चर्चा की गई है।

फ्रूट प्लकर / हार्वेस्टर

भारत फल और सब्जियों का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश है। फल वृक्षों की ऊँचाई, फलों की आकृति एवं आकार में भिन्नता, परिपक्वता में असमानता के कारण फलों की यांत्रिक तुड़ाई एक जटिल प्रक्रिया है। फलों के पेड़ों पर चढ़ने के लिए विशेष कौशल की आवश्यकता होती है और प्रत्येक फल को हाथ से तोड़ने से यह प्रक्रिया बहुत कठिन हो जाती है। शाखा हिलाकर फल तोड़ना सबसे आम बात है, लेकिन इससे फलों को क्षति होती है। कृषि में मशीनीकरण में उन्नति के बाद भी, फलों की तुड़ाई की दिशा में विशेष प्रयास नहीं हो पाए हैं। इस कारण फलों की कटाई में यंत्रीकरण आवश्यक है। हालाँकि फलों की कटाई के लिए कुछ

प्लास्टिक फ्रूट हार्वेस्टर द्वारा सेब की तुड़ाई

*कृषि विज्ञान केंद्र (भाकृअनुप-वि.पर्व.कृ.अनु.सं.), चिन्यालीसौड़, उत्तरकाशी, उत्तराखण्ड

फल मक्खी प्रपंच

पुरानी प्लास्टिक की बोतलों / कंटेनरों का पुनः उपयोग कर फल मक्खी प्रपंच आसानी से बनाया जा सकता है। यद्यपि इस तरह के प्रपंच बाजार में 300 से 500 रुपये तक की कीमत में उपलब्ध हैं। घर में बेकार पड़े प्लास्टिक का पुनः उपयोग करके लगभग नाममात्र के खर्चे पर ये घर पर ही तैयार किए जा सकते हैं। इस तरह के जाल घर के बगीचों में उपयोग करने के लिए अच्छे हैं। मिथाइल यूजेनॉल नामक रसायन का उपयोग करके इन्हें ट्रैप किया जा सकता है व कीटनाशक में भीगी हुई रुई का उपयोग करके मक्खियों को नियंत्रित किया जा सकता है। एक एकल बोतल का कई बार पुनः उपयोग किया जा सकता है, जिससे यह कीटनाशकों की खपत को भी रोकता है।

फल मक्खी प्रपंच का निर्माण

प्लास्टिक बोतल से बनाया गया फ्रूट हार्वेस्टर

प्रौद्योगिकियाँ मौजूद हैं, लेकिन विशेष रूप से नरम और ताजे फलों में यांत्रिक क्षति के जोखिम के कारण ये बहुत अधिक प्रचलन में नहीं हैं। फ्रूट पिकर के रूप में प्लास्टिक पेय की बोतलों का उपयोग छोटे किसानों, घर के बागों और कँटीले पेड़ों के लिए एक अच्छा विकल्प हो सकता है। जामुन, आड़ू, नेक्ट्रीन, सेब, अमरूद, अनार जैसे कई फल वृक्षों से फलों को सुरक्षित तोड़ने के लिए यह सरल, हस्तनिर्मित और आर्थिक रूप से अच्छा साधन है। फ्रूट पिकर के उपयोग द्वारा समय और श्रम दोनों की बचत होती है, और इसका उपयोग हर लिंग और आयु वर्ग के लोग आसानी से कर सकते हैं।

ऊर्ध्वाधर गार्डन और नर्सरी स्थापना

प्लास्टिक की बोतलों और जार का उपयोग घरों और कार्यालय के परिवेश में सुंदरता लाने के लिये किया जा सकता है। विभिन्न सजावटी पौधों को प्लास्टिक के कंटेनरों में उगाया जाता है, और फिर इन्हें दीवारों या अन्य जगहों पर रख दिया जाता है।

पुरानी बोतलों में नर्सरी पौध उत्पादन

इस प्रकार के दीवार उद्यान तापमान को बनाए रखने में भी मदद करते हैं। ये वातावरण को ठंडा रखते हैं और हवा को शुद्ध करके कमरे और परिवेश की सूक्ष्म जलवायु को प्रभावित करते हैं। इस तरह के प्रयास प्लास्टिक को कचरे से हरे रंग में बदल सकते हैं। पानी और पेय की छोटी बोतलों का उपयोग प्रो ट्रे की बजाय नर्सरी में पौधा उगाने के लिए किया जा सकता है।

पॉलीनाइजर गुलदस्ते

अच्छे परागण के लिए पॉलीनाइजर पौधों की फूलयुक्त शाखाओं के गुलदस्ते को फल देने वाले पेड़ों के आसपास के बाग में, लटकाया जा सकता है। इसके लिए पुरानी प्लास्टिक की बोतलों का उपयोग किया जा सकता है। पॉलीनाइजर पौधों को फूलयुक्त शाखाओं की ऐसी बोतलों में रखा जा सकता है और बाग में कहीं भी लटकाया जा सकता है। आवश्यक देखभाल के तौर पर नियमित रूप से पानी की आपूर्ति इन बोतलों में की जानी चाहिए। फलों के पेड़ों में परागण क्षमता को बढ़ाने के लिए यह एक सस्ता और आसान घरेलू तरीका है, विशेष रूप से तब जब पॉलीनाइजर पौधों को लगाने के लिए सीमित जगह होती है।

एकल उपयोग प्लास्टिक के कारण होने वाले खतरों को कम करने के लिए, कुछ अभिनव प्रयासों द्वारा कुछ राहत की उम्मीद की जा सकती है। इन सभी उपकरणों का उपयोग करना बेहद आसान है और बिना किसी लागत एवं विशेष प्रशिक्षण लिये घर पर ही आसानी से बनाया जा सकता है। पेय की बोतलों और उपयोग हो चुके प्लास्टिक के जारों को फलों के हार्वेस्टर, फल मक्खी ट्रैप, पॉलीनाइजर गुलदस्ते और ऊर्ध्वाधर उद्यानों के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। बेकार पड़ी प्लास्टिक सामग्री का फिर से उपयोग करना प्रदूषण को कम करने के लिए एक प्रभावी कदम होगा। ■

प्लास्टिक बोतल एवं पॉलीथीन का पॉलीनाइजर गुलदस्ता बनाने में उपयोग

अदभुत एलोवेरा

दीपक कोहली*

एलोवेरा में विटामिन ए, सी, ई, फॉलिक एसिड, कोलीन, बी$_1$, बी$_2$, बी$_3$ और बी$_6$ पाये जाते हैं। इसमें करीब 20 प्रकार के मिनरल्स; कैल्शियम, मैग्नीशियम, जिंक, क्रोमियम, सेलेनियम, सोडियम, आयरन, पोटेशियम, कॉपर और मैंगनीज पाये जाते हैं। शरीर को तकरीबन 22 अमीनो अम्ल की जरूरत होती है, जिनमें 8 बहुत ही जरूरी होते हैं। अकेले 18-20 अमीनो अम्ल और 8 जरूरी अम्ल एलोवेरा में पाए जाते हैं। हृदय स्वास्थ्य के लिए यह शरीर को एल्कलाइज रखता है, त्वचा के लिए फायदेमंद है और शरीर की इम्यूनिटी बढ़ाता है। इसके अलावा सूजन कम करने में कारगर और मोटापा कम करने में फायदेमंद है।

विश्व भर के विभिन्न भागों में पाए जाने वाले एलोवेरा को देश-विदेश के अलग-अलग हिस्सों में कई नामों से जाना जाता है, जैसे- ग्वारपाठा, घृतकुमारी, घीक्वार, क्वारगंदल आदि। यह प्रजाति विश्व के अन्य स्थानों पर स्वाभाविक रूप से नहीं पायी जाती पर इसकी निकट संबंधी अलग प्रजातियां उत्तरी अफ्रीका में पाई जाती हैं। इसे सभी सभ्यताओं ने एक औषधीय पौधे के रूप में मान्यता दी है। इस प्रजाति के पौधे का इस्तेमाल पहली शताब्दी से औषधि के रूप में किया जा रहा है। इसकी उत्पत्ति संभवतः उत्तरी अफ्रीका में हुई थी। आयुर्वेद में महत्वपूर्ण औषधि के रूप में इस्तेमाल होने वाले एलोवेरा से दो सौ से अधिक रोगों का निदान संभव है। विटामिन ए, सी और ई काफी मात्रा में पाए जाने के कारण यह सभी स्वस्थ कोशिकाओं के विकास में सहायक है और बालों को चमकदार बनाता है। यह पेट के रोगों को दूर करने के साथ ही शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को भी बढ़ाता है। ■

औषधीय उपयोग

- एलोवेरा का जूस हमारे शरीर में जाकर हमारी नसों और खून की सफाई करता है जिससे हमें शक्ति मिलती है और हमारे अंदर स्फूर्ति बनी रहती है।
- एलोवेरा को किसी भी उम्र के लोग इस्तेमाल कर सकते हैं। इसका कोई बुरा असर नहीं होता है।
- एलोवेरा को संजीवनी बूटी भी कहा जाता है क्योंकि हमारे शरीर में जाने के बाद उन हिस्सों को ठीक करता है जो खराब हो चुके हैं।
- एलोवेरा में खाने को पचाने वाले सारे एन्जाइम पाए जाते हैं। इनमें से कुछ तो ऐसे होते हैं जिन्हें खुद पेंक्रियाज भी नहीं बना पाता।
- एलोवेरा में कुछ ऐसे औषधीय तत्व जैसे कि स्टेरोल्स, एंजाइम्स, और ग्लाइकोप्रोटीन्स, एंथ्रेक्वीनोन्स, सेलिसाइलेट्स, आदि मौजूद होते हैं जो कि हमारे शरीर में होने वाले दर्द को कम कर देते हैं।
- एलोवेरा इतना लाभदायक होता है कि सेल्मोनेला, स्टेफीलोकोकस, स्ट्रेपटोकोसी और ई-कोलई जैसे बैक्टीरिया के अलावा केंडिडा एल्बीकेंस जैसे फंगस को भी खत्म कर देता है।
- एलोवेरा में मौजूद हार्मोन पुरानी और मृत कोशिकाओं को नष्टकर नई कोशिकाओं को स्थापित करता है।
- एलोवेरा में उपचारात्मक गुण भी पाये जाते हैं जिससे एलर्जी और कीटाणुओं के कारण होने वाली खुजली दूर हो जाती है।
- एलोवेरा से जलने के कारण हुए घाव, सनबर्न और त्वचा की अन्य क्षतियां ठीक हो जाती हैं।
- एलोवेरा के इस्तेमाल से त्वचा में चमक आती है और त्वचा स्वस्थ होती है।

*संयुक्त सचिव, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन विभाग, उत्तर प्रदेश शासन, 5/104, विपुल खंड, गोमती नगर, लखनऊ

अरारोट की खेती में संभावनाएं

विजय लक्ष्मी दास*, पंकज कुमार सिंह** और **राजेंद्र कुमार*****

अरारोट का वानस्पतिक नाम *कुरकुमा अंगुस्टीफोबिया* है। यह हल्दी जाति का पौधा है जिसकी जड़, सफेद चूर्ण के रूप में उपयोगी होती है। आज अपने औषधीय गुणों के कारण यह देश-विदेश में भी लोकप्रिय बन गया है। यह हमारे देश में अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग नामों से जाना जाता है। इसे हिंदी भाषी तीखुर, तवाखीर या अरारोट कहते हैं, वहीं संस्कृत में इसे तवक्षीर, पयछीर, एवज, तालछीर कहते हैं। अंग्रेजी में इसे इंडियन एरोरूट, ओडिशा में पलुवा, कन्नड़ में कोबिहित्तु, बांग्ला में टीवक्कुर, तेलगु में अरारूट गडालू, नेपाली में बारखी सारो, मलयालम में कुवां तथा गुजराती में तेवखरा कहते हैं।

यह पौधा *जिंजिबरेसी* कुल का है जो देखने में हल्दी के पौधों के समान दिखाई देता है। इसे सफेद हल्दी के नाम से भी जाना जाता है। इस पौधे की जड़ों में कपूर के समान गंध निकलती है, इस कारण इसे जंगलों में आसानी से पहचाना जा सकता है।

यह एक तनारहित राइजोम अर्थात कंदिल जड़ वाला पौधा है। इसकी जड़ों से लम्बी मांसल रेशे जैसी संरचनाएं निकलती हैं, जिनके सिरों पर हल्के मैले रंग के कंद पाए जाते हैं। इनकी पत्तियाँ लम्बाई में करीब 30-40 सें. मी. लम्बी, भालाकार तथा नुकीले शीर्ष वाली होती हैं। इनके पुष्प पीले रंग के गुलाबी सहपत्र से घिरे होते हैं। इन पौधों की ऊँचाई 30-60 सें.मी. होती है। इनके फल अंडाकार एवं बीज छोटे-छोटे होते हैं। इस पौधे के राइजोम मध्यम आकार के एवं रेशेनुमा संरचनाएं ही फिंगर राइजोम कहलाती हैं। राइजोम ही मुख्य रूप से औषधीय महत्व के होते हैं।

रासायनिक संघटन: इस पौधे के राइजोम से प्राप्त होने वाले उड़नशील तेल में अल्फा बीटा पाइनिन, कुरकुमिन तथा जिंजीवेराल रासायनिक घटक पाए जाते हैं।

जलवायु एवं मृदा: इस पौधे की अच्छी वृद्धि एवं उपज के लिए उष्ण जलवायु उपयुक्त है। यह पौधा मध्य भारत की मूल प्रजाति है जो हमारे देश के पश्चिम बंगाल, चेन्नई तथा हिमालय के निचले पर्वतीय भागों में प्राकृतिक रूप से पाई जाती है। इसके अलावा देश के मिश्रित वन प्रदेश एवं वनों में भी पाई जाती है। इन पौधों की पत्तियाँ अक्टूबर-नवम्बर माह में सूखने लगती हैं। इसे क्षेत्र के मूलवासी खोदकर जमीन से निकाल लेते हैं और संग्रहित करते हैं। इस पौधे की खेती के लिए रेतीली दोमट मिट्टी, जिसमें जल निकास की उचित व्यवस्था हो, सबसे अधिक उपयुक्त होती है। इसके उचित विकास के लिए 25-30 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान की आवश्यकता होती है। इसकी जड़ों के विकास के लिए आंशिक छायादार या खुले स्थान काफी उपयुक्त होते हैं।

अरारोट का पौधा

अरारोट का फूल

खेत की तैयारी: अरारोट की खेती के लिए पहले से चयनित खेत की ग्रीष्मकालीन जुताई (प्राय: मई माह में) कम से कम 2 बार हल द्वारा अवश्य करनी चाहिए। इसके कई फायदे होते हैं। इस जुताई से मृदा में पाए जाने वाले जीवाश्म समाप्त हो जाते हैं। तत्पश्चात गोबर की खाद 10-15 टन प्रति हैक्टर के हिसाब से मिलाकर उसमें अच्छी तरह से पाटा चला देना चाहिए।

रोपाई का समय एवं विधि: रोपाई हमेशा समयानुसार करनी चाहिए। इसके लिए अप्रैल-मई का महीना उपयुक्त रहता है।

सारणी : अरारोट पाउडर के तत्वों की रासायनिक संरचना (प्रति 100 ग्राम)

क्र. सं.	तत्व	मात्रा (ग्राम)	क्र. सं.	तत्व	मात्रा (ग्राम)
1.	संतृप्त वसीय अम्ल	0.01	6.	कैल्शियम	0.09
2.	वसा ग्राम	0.06	7.	आयरन	0.013
3.	कार्बोहाइड्रेट	82.0	8.	विटामिन	3407 आई यू
4.	फाइबर	14.0	9.	विटामिन सी	0.074
5.	सोडियम	0.02			

*संेचुरियन यूनिवर्सिटी ऑफ टैक्नोलॉजी एंड मैनेजमेंट, भुबनेश्वर, ओडिशा; **भाकृअनुप-केंद्रीय वर्षाश्रित ऊपराऊं भूमि चावल अनुसंधान केन्द्र, हजारीबाग, झारखण्ड; ***बीज एवं अनुसन्धान फार्म, भाकृअनुप-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसन्धान संस्थान, हिसार, हरियाणा

प्रसंस्करण विधि

सर्वप्रथम कन्दों को पानी से अच्छी तरह से धो लेना चाहिए जिससे उसमें किसी भी प्रकार की धूल एवं मिट्टी न हो। अब इन कंदों को साफ पत्थर पर रखकर घिसा जाता है या किसी भारी साफ की हुए वस्तु से कुचला जाता है जिससे गाढ़ा द्रव निकलता है। इस गाढ़े द्रव को, जिससे स्टार्च बनता है, अच्छी तरह पानी में 3-4 बार निथारने से बची कुछ अशुद्धियाँ एवं रेशे भी बाहर निकल जाते हैं।

अब इस स्टार्च को जमने के लिए छोड़ दिया जाता है। जमे हुए स्टार्च को हर 24 घंटे में एक बार पूरी तरह हिलाकर ठन्डे पानी से धोया जाता है ताकि सभी तरह की अशुद्धियाँ बाहर निकल जायें। यह प्रक्रिया लगातार 6 दिनों तक करनी होती है। इस प्रकार स्टार्च का रंग पूरी तरह सफेद हो जाता है। तत्पश्चात सातवें दिन इसे किसी साफ ट्रे में रखकर धूप में सुखाया जाता है। अन्त में इस ट्रे में सूखे पड़े क्रिस्टल तैयार हो जाते हैं। इन क्रिस्टल को पीसकर आटे के रूप में तैयार कर लिया जाता है और इसी को अरारोट कहा जाता है। इस विधि से तैयार अरारोट पाउडर को पैकिंग करके बाजार में विक्रय के लिए भेजा जाता है। सामान्यत: एक किलोग्राम अरारोट पाउडर के लिए 10 किलोग्राम कच्चे कंदों की आवश्यकता होती है।

अरारोट प्रसंस्करण की घरेलू विधि

अरारोट एक कंदवर्गीय फसल है। अत: इस बात का हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि खेत की मिट्टी को गहरा हल चलाकर पलेवा किया गया हो। इसके बाद समतल की गयी मृदा में 30-35 सें.मी. के अंतराल पर 20-25 गहरी नालियाँ बना लेनी चाहिए। रोपाई के दौरान तापमान 20-25 डिग्री सेंटीग्रेड से अधिक होना अच्छा माना जाता है। यदि रोपाई के ठीक बाद बारिश हो जाये तो अंकुरण अच्छा होता है इस बात का भी हमेशा ध्यान रहे कि सिंचाई बिल्कुल भी ना करें। इस पौधों में जुलाई एवं अगस्त माह में फूल खिलते हैं। इनके फूलों को सजावट एवं गुलदस्ते के रूप में उपयोग में लाया जाता है। इसके फूलों की विशेषता यह है कि इसे पानी में रखने से करीब 10 दिनों तक इसके फूल मुरझाते नहीं हैं। इनको बाजार में गुलदस्ते के व्यवसाय के रूप में बढ़ावा दिया जा सकता है।

उन्नत किस्में: अरारोट की खेती पर अब तक कोई विशेष कृषि अनुसन्धान कार्य नहीं हुआ है, इसीलिए उन्नत किस्मों का विकास विशेष रूप से नहीं हो पाया है। परन्तु किसान भाई खेती के लिए आस-पास के जंगलों में उगने वाले अरारोट के प्रभेदों का इस्तेमाल नई फसलों को उगाने के लिए कर सकते हैं। एक एकड़ के लिए 6-8 क्विंटल कंदों की आवश्यकता होती है जिसमें एक कंद का वजन लगभग 30-50 ग्राम होता है।

बीजोपचार: तैयार की गयी जमीन में कंदों को लगाने से पहले कार्बेन्डाजिम या बाविस्टीन फफूँदनाशक से उपचारित अवश्य कर लेना चाहिए। इसके लिए 2-5 ग्राम दवा प्रति 1 किलोग्राम कंदों के बीज उपचार के लिए उपयोग में लाना चाहिये। ऐसा करने से प्रभेदों के सड़ने का डर नहीं रहता है।

निराई-गुड़ाई एवं सिंचाई: अच्छी फसलों तथा खरपतवारों से खेतों को मुक्त रखने के लिए खरपतवारों का उन्मूलन आवश्यक है। रोपाई के 30-40 दिनों के अंदर निराई-गुड़ाई एवं मिट्टी चढ़ाई का कार्य करें तथा ठीक 130-135 दिन के अंदर दूसरी बार

अरारोट के औषधीय गुण

- अरारोट की जड़ें शक्तिवर्धक, ज्वरनाशक, पौष्टिक एवं रक्तशोधक होती हैं।
- कंद के अर्क का उपयोग अपच, दमा, जलन, पथरी, मूत्र रोग, रक्त की कमी, पेचिश, कोढ़, अस्वाद एवं श्वेत कुष्ठ रोग की औषधि के रूप में करते हैं।
- अरारोट अधिक उम्र के व्यक्तियों एवं बच्चों में कमजोरी को दूर करने में काफी महत्वपूर्ण होता है।
- इसकी जड़ भी दवा के रूप में उपयोग में लायी जाती है। स्टार्च एवं कार्बोहाइड्रेट इसके प्रमुख तत्व हैं।
- इसके आटे में पानी एवं दूध मिलाकर भोजन के रूप में तैयार किया जाता है।
- यह एक उत्तम हर्बल टॉनिक है। यह खाँसी में कफ को कम करता है।
- इसके पत्तों से निकाले गए तेल एंटीबैक्टीरियल गुणों से भरपूर होते हैं।
- फेफड़ों एवं अमाशय में एलर्जी एवं बुखार की स्थिति में भी यह काफी उपयोगी होता है।
- यह पित्तनाशक के साथ-साथ वात को भी कम करता है।
- शरीर की बाहरी त्वचा में लगे घाव को ठीक करने और मुँह के छालों में शहद के साथ इसका उपयोग फायदेमंद होता है।
- कई बार इसके घोल को माँ के दूध के पूरक की तरह कुछ समय तक बच्चों को दिया जाता है।
- यह हृदय रोगियों के लिए एक अच्छा टॉनिक भी है।

आय गणना

700 किग्रा स्टार्च (200 रु.) प्रति किग्रा 700 x 200 = रु.140000
शुद्ध आय 140000-71100 = रु.68900
इस प्रकार किसान भाई प्रति एकड़ से रुपये 68900/- का लाभ प्राप्त कर सकते हैं

क्र. सं.	सामग्री	मात्रा	लागत (रुपये में)
1.	बीज/कंद (रोपण हेतु)	700 किग्रा	40X700=28000
2.	गोबर की खाद	4 ट्रॉली	2500X4=10000
3.	खेत जुताई में लागत	700 प्रति घंटा	700X3=2100
4.	मेड़ बनाना, बीज रोपाई, निराई गुड़ाई एवं सिंचाई हेतु लागत	10	10000
5.	स्टार्च बनाने का खर्च	300 प्रति किग्रा	700X30=21000
6.	अन्य खर्च		2000
		कुल खर्च	71100

और अंतिम मिट्टी चढ़ाने का कार्य करें। यदि वर्षा नहीं हो रही है तो जमीन सूखी होने पर सिंचाई जरूर करें, ध्यान रहे कि मिट्टी में अधिक नमी न हो।

रोग एवं रोकथाम: वैसे तो अरारोट की फसल में कोई विशेष रोग एवं कीट का प्रकोप नहीं देखा गया है परन्तु कभी-कभी इसकी पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं और उन पर काले रंग के धब्बे दिखाई देने लगते हैं। ऐसी स्थिति में एक कीटनाशक मोनोक्रोटोफॉस का छिड़काव अवश्य करें। इसके अलावा रोग-कीट प्रभावित पौधों को उखाड़कर फेंक देना सर्वथा उचित होता है।

कन्दों की खुदाई एवं संग्रहण: परिपक्व कन्दों को अक्टूबर-नवम्बर के महीने में जमीन से खोदकर निकाल लिया जाता है। अरारोट फसल की अवधि 7-8 माह की होती है। इस अवधि के पश्चात कंदों की खुदाई किसी भारी साफ छोटे कुदाल से कर लेनी चाहिए। पत्तों के सूखने का तात्पर्य है कि कंद परिपक्व हो चुके हैं और वे खुदाई के लिए पूर्ण रूप से तैयार हैं। खुदाई किये गए कन्दों को छायादार स्थान में फैलाकर सुखाना चाहिए। साथ ही प्रमुख कन्दों के बीजों को रोपण के लिए अगले वर्ष तक सुरक्षित कर लेना चाहिए। कई बार किसान छोटे-छोटे कन्दों को पुनरुत्पादन हेतु वहीं मिट्टी में दबाकर छोड़ देते हैं।

बाजार में कीमत: किसान भाई यदि अरारोट की खेती व्यावसायिक तौर पर करते हैं तो इसका वर्तमान में बाजार मूल्य 25-30 रुपये प्रति किलोग्राम तक होता है। एक हैक्टर क्षेत्र में लगभग 30-40 क्विंटल कंद प्राप्त हो जाते हैं जिसका बाजार मूल्य लगभग रु.120000/- है। इन कंदों को बेच कर करीब रु.80900/-लाभ प्राप्त किया जा सकता है। अरारोट पाउडर की कीमत आज बाजार में करीब 200 रुपये प्रति किलोग्राम है। अतः किसान भाई इसे उगाकर एक अच्छी आय का स्रोत बना सकते हैं।

अरारोट की खेती से आय

यदि अरारोट कन्दों की खेती से होने वाली आय का प्रति एकड़ के हिसाब से आंकलन करें तो शुद्ध आय रुपये 68900/- प्रति एकड़ हो सकती है।

भाकृअनुप की मासिक लोकप्रिय पत्रिका
'फल फूल' पत्रिका के जनवरी-फरवरी, 2023 अंक के मुख्य आकर्षण

- फल एवं सब्जियों में मूल्यवर्द्धन
- नवग्रह वाटिका
- नेट हाउस में हाइटिक बीज उत्पादन में उत्पादकता बढ़ाने के लिए अभिनव पद्धतियां
- संरक्षित परिस्थितियों में करेले की खेती की संभावनाएं
- शुष्क क्षेत्रों में लसोड़ा की खेती : कम लागत में अधिक आमदनी
- मशरूम उत्पादन : एक उभरता कृषि व्यवसाय
- पोषण से भरपूर : शुष्क क्षेत्रीय फल और सब्जियां
- ब्रोकली की उन्नत खेती
- हिमाचल प्रदेश में अखरोट की उन्नत बागवानी के पहलू
- ऑर्किड सुखाने की तकनीक
- टमाटर की खेती से दोगुनी आय
- फलः मानव में खनिज कुपोषण को दूर करने का सर्वोत्तम उपाय
- ब्रिमैटोः भारतीय कृषि को कलम विधि की नयी सौगात
- फलोद्यान का रेखांकन एवं संस्थापना
- जिमीकंद की लाभदायक उन्नत खेती
- पर्वतीय क्षेत्रों में लेटयूस की खेती
- न्यूनतम कृषि आदानों पर शुष्क क्षेत्रों में खेती के लिए वरदान "कैर"
- तुलसी की उन्नत खेती
- सौंफ उपजाएं, लाभ पाएं

संपर्क सूत्रः प्रभारी, व्यवसाय एकक, भाकृअनुप-कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, कैब-1, पूसा गेट, नई दिल्ली-110012
दूरभाषः 25843657, www.icar.org.in

जानकारी

नवम्बर-दिसम्बर में बागवानी कार्यकलाप

हरे कृष्ण*, अरविंद कुमार सिंह, रामकेश मीणा*** और पुष्पेंद्र प्रताप सिंह******

हेमन्त का आगमन होते ही पेड़ों से पत्ते झड़ने लगते हैं। पुराने पत्ते पीले होकर पेड़ों से गिरते हैं, ताकि नये पत्ते उनकी जगह ले सकें। नव-निर्माण का सन्देश देने वाली यह ऋतु प्राकृतिक एवं उद्यानिकी दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस ऋतु के आरंभ के साथ ही उद्यान में किए जाने वाले कृषि-कलापों का महत्व भी बढ़ जाता है, क्योंकि इस अवधि के दौरान जहां अमरूद, आंवला और नीबूवर्गीय फलों के विपणन की व्यवस्था करनी होती है, वहीं बागों में खाद-उर्वरण, निराई-गुड़ाई तथा काट-छांट की भी तैयारी करनी होती है।

नवम्बर से दिसम्बर की द्विमाही में छोटे पौधों को पाले से बचाने की विशेष व्यवस्था करनी जरूरी है। पाले की समस्या शीतोष्ण फलों की अपेक्षा उष्ण और उपोष्ण कटिबंधीय फलों विशेषकर केला, पपीता, लीची, आम इत्यादि में अधिक होती है। अत: पौधों को छप्पर लगाकर, धुआं देकर व सिंचाई करके पाले से बचाने की समुचित व्यवस्था करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त फलों को कीटों और व्याधियों से भी बचाने की पूरी तैयारी करनी पड़ती है। इस द्विमाही में बागों में किए जाने वाले प्रमुख कृषि कार्यों का विवरण प्रस्तुत है।

केला

जिन क्षेत्रों (दक्कन) में केले की रबी ऋतु वाली रोपाई करना अगर शेष हो तो उसे इस द्विमाही तक पूरा कर लें। नवम्बर-दिसम्बर में केले में प्रति पौधा 55 ग्राम यूरिया का प्रयोग करें तथा 10 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करें। पर्ण चित्ती एवं फल सड़न रोग के लिए 1 ग्राम कार्बेन्डाजिम प्रति लीटर की दर से छिड़काव करें। पंद्रह दिनों के अंतराल पर हल्की सिंचाई अवश्य करें। यदि पौधों पर पोषक तत्वों की कमी के लक्षण दिखायी दें तो क्रमश: फेरस सल्फेट (0.5 प्रतिशत), जिंक सल्फेट (0.5 प्रतिशत) और बोरेक्स (0.5 प्रतिशत) का पर्णीय छिड़काव करें। चूंकि केला पाले के प्रति बहुत संवेदनशील होता है अत: दिसम्बर में पौधों को पाले से बचाने की विशेष व्यवस्था करें। इसके लिए उद्यान में रात के समय धुआं करें एवं समय-समय पर ओवरहेड फुहारा विधि द्वारा बाग में पानी का छिड़काव करते रहें।

केला

आम के बगीचे में इस माह के दौरान, बगीचे में जुताई कर खरपतवार को निकाल दें। जुताई से मिलीबग कीट के अण्डे और प्यूपे नष्ट हो जाते हैं, जिससे इस कीट को नियंत्रित करने में भी सहायता मिलती है। मिली बग कीट को पेड़ों पर चढ़ने से रोकने के लिए 30-45 सें.मी. चौड़ी 400 गेज की एल्काथेन पॉलीथीन को जमीन से 40-60 सें.मी. ऊपर तने पर बांधना चाहिए। पॉलीथीन को बांधने से पहले छाल के सभी छिद्रों और दरारों को मिट्टी से पलस्तर अथवा पॉलीथीन के निचले सिरे की तरफ ग्रीस का प्रयोग करना चाहिए अन्यथा कीट उन दरारों से होकर पेड़ों पर चढ़ सकते हैं। उस अवस्था में जब निम्फ (किशोर कीट) वृक्ष पर चढ़ चुके हों, वहां नीम बीज की गिरी के निचोड़ (5 मिलीलीटर प्रति लीटर) अथवा नीम के तेल (5 मिलीलीटर प्रति लीटर डिटर्जेंट पाउडर 1 ग्राम प्रति लीटर) के घोल का छिड़काव करना चाहिए। यह ऋतु, छाल खाने वाले कीट को नियंत्रित करने के लिए भी सर्वथा उपयुक्त है। कीट द्वारा बनाए गए छिद्रों की पहचान कर उनमें मिट्टी के तेल अथवा पेट्रोल से भीगी रूई को डालें तत्पश्चात उन्हें गीली मिट्टी से बंद कर दें। समय से पहले निकलने वाले पुष्प गुच्छों को काटकर अलग कर दें ताकि गुच्छा रोग के प्रकोप को कम किया जा सके।

अमरूद

अमरूद के लिए यह द्विमाही बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इस दौरान बाग में निराई-गुड़ाई, खाद एवं उर्वर प्रबंधन, कीट प्रबंधन से लेकर तुड़ाई तथा विपणन की भी व्यवस्था करनी पड़ती है। नवंबर माह में अमरूद के बागों में निराई-गुड़ाई और सिंचाई की व्यवस्था की जानी चाहिए। इसके साथ ही नवंबर-दिसंबर के महीने में, गोबर की अच्छी तरह से सड़ी-गली खाद को रासायनिक उर्वरकों जैसे सिंगल सुपर फॉस्फेट (एसएसपी) और म्यूरेट ऑफ पोटाश (एमओपी) के साथ दिया जाना चाहिए। यूरिया की आधी मात्रा भी नवंबर माह में देनी चाहिए, जबकि शेष आधी मात्रा जुलाई में देनी चाहिए। छह वर्ष के पौधे को, सामान्यत:, 60 किलो गोबर की खाद, 1 किलो यूरिया, 2.5 किलो एसएसपी और आधा किलो एमओपी दिया जा सकता है अथवा 75 ग्राम नाइट्रोजन 65 ग्राम फॉस्फोरस 50 ग्राम पोटेशियम प्रति वृक्ष प्रति वर्ष के दर से भी दिया जा सकता है। यह भी ध्यान देना आवश्यक है कि उर्वरकों की खुराक केवल मृदा परीक्षण के आधार पर ही हो। चूंकि अमरूद पोषी जड़ 25 सें.मी. गहराई तक मिट्टी की सतह में पाई जाती

*भाकृअनुप-भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी, उत्तर प्रदेश; **केंद्रीय बागवानी परीक्षण केंद्र, (केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान), वेजलपुर (गोधरा), गुजरात; ***भाकृअनुप-केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीछवाल, बीकानेर; ****भाकृअनुप-भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान, मोदीपुरम, मेरठ

हैं, अतः उर्वरकों के बेहतर उपयोग के लिए उन्हें पेड़ के तने से 1 मीटर की दूरी पर 25 सें.मी. गहरी खाइयों में दिया जाना चाहिए। नवम्बर-दिसम्बर में वृक्षों तथा छोटे पौधों को पाले से बचाने की समुचित व्यवस्था करनी चाहिए। छाल खाने वाले कीट की रोकथाम के लिए कीट द्वारा बनाए गए छिद्रों की पहचान कर उनमें मिट्टी के तेल अथवा पेट्रोल से भीगी रूई को डालें तत्पश्चात उन्हें गीली मिट्टी से बंद कर दें। पके फलों को पक्षियों के प्रकोप से बचाने की तैयारी होनी चाहिए। इसके लिए वृक्षों पर पक्षियों को डराने वाला चमकीला फीता लगाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, मानवाकार पुतलों (बिजूका) या पटाखों की ध्वनि से भी पक्षियों को बागों से दूर रखा जा सकता है। तैयार पके फलों को तोड़कर बाजार भेजने की व्यवस्था करें। तुड़ाई-उपरांत फलों का पूर्व शीतन अवश्य करें। फलों का किस्मों एवं आकार के आधार पर श्रेणीकरण कर लें, जिससे बाजार में उत्पाद का उचित मूल्य प्राप्त हो सके। स्टूलिंग विधि से पौधे तैयार करने के लिए 2-3 वर्ष के पौधों को जमीन से 4-5 इंच ऊंचाई पर काट दें, जिससे उनमें अगली तिमाही में फुटाव आयेगा।

लीची

नवंबर माह में, प्ररोह से निकलने वाले नए सांकुरों को निकाल दें। यदि छाल खाने वाले कीट का प्रकोप दिखायी दे तो उसकी व्यवस्था करें। दिसंबर माह में, जिंक सल्फेट (2 ग्राम प्रति लीटर) का छिड़काव अथवा प्रति वृक्ष 20-25 ग्राम की दर से मिट्टी में मिलाएँ। लीची में 'मिलीबग' की रोकथाम के लिए प्रति वृक्ष 250 ग्राम क्लोरोपाइरीफॉस कणिकाओं का बुरकाव पेड़ के एक मीटर के घेरे में कर दें। फिर पेड़ के तने पर जमीन से 30-40 सेन्टीमीटर की ऊंचाई पर 400 गेज वाली एल्काथीन की 30 सेन्टीमीटर चौड़ी पट्टी सुतली आदि से कसकर बांध दें और उसके दोनों सिरों पर गीली मिट्टी या ग्रीस से लेप कर दें। इससे पेड़ पर मिलीबग का प्रकोप नहीं होगा। नवंबर माह में लीची में अर्ध कुण्डलक कीट (सेमी लूपर) का प्रकोप होने पर नीम आधारित रसायनों या बीटी आधारित रसायनों अथवा डेल्टामेथ्रिन 2.5 ई.सी. (1 मिलीलीटर प्रति लीटर) का प्रयोग करें। दिसम्बर में गोबर की अच्छी तरह से सड़ी खाद (25 से 30 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष) का उद्यान में प्रयोग करें। इसके अतिरिक्त, यदि तनाबेधक कीट का प्रकोप हो तो साइपरमेथ्रिन (1 मिली प्रति लीटर) का छिड़काव करें। चिंचड़ियों से प्रभावित भागों को काटकर नष्ट कर दें। नए बागों में, छोटे पौधों को पाले बचाने के लिए समुचित व्यवस्था करें। पाले से बचाने के लिए पौधों को पुआल से बने छप्परों से ढकें और बागों में हल्की सिंचाई की व्यवस्था करें।

इस अवधि के दौरान बहुत सारे आवश्यक कृषि-कार्य करने होते हैं, जिनका फलोत्पादन की दृष्टि से दूरगामी प्रभाव पड़ता है। नवम्बर माह में शीर्षारंभी क्षय अथवा डाइ-बैक के लक्षण दिखना सामान्य है। इसलिए सबसे पहले मृत ऊतकों से लेकर स्वस्थ हरे भाग के 5-10 सेंटीमीटर की कटाई करनी चाहिए और फिर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत) का 15 दिनों के अंतराल पर दो बार छिड़काव करना चाहिए।

पपीते

पिछले माह लगाए गए पौधों की सिंचाई करनी चाहिए। उद्यान की सफाई करके खरपतवारों को निकाल देना चाहिए। नवम्बर के पहले और तीसरे हफ्ते में हल्की सिंचाई करने के पश्चात उद्यान में निराई-गुराई करें। दिसम्बर में फॉस्फोरस तथा पोटाशयुक्त उर्वरक को मिट्टी में भली-भांति मिलाएं तथा गोबर की अच्छी तरह से सड़ी हुई खाद का प्रयोग करें। पौधे को पाले से बचाना बहुत आवश्यक है। इसके लिए नवम्बर के अंत में तीन तरफ से पुआल से अच्छी प्रकार ढक दें एवं दक्षिण- पूर्व दिशा में खुला छोड़ दें और समय-समय पर धुआँ करें। इसके प्रबंधन हेतु प्रभावित पौधों के गिरे अवशेषों को एकत्रित कर नष्ट कर देना चाहिए। कवकनाशी जैसे, टाप्सीन एम 0.1 प्रतिशत, मैंकोजेब, 0.2 से 0.25 प्रतिशत का घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए। यह छिड़काव 15-20 दिनों के अंतराल पर दोहरा देना चाहिए। उत्तर भारत में अप्रैल-जुलाई तक रोपित पौधों में फल दिसम्बर-जनवरी में तुड़ाई योग्य हो जाते हैं। यदि फल तोड़ने पर दूध, पानी की तरह निकलने लगे तब पपीता तुड़ाई योग्य हो जाता है।

अनार

इस द्विमाही में अनार में बैक्टीरियल ब्लाइट, कवक रोगों और हानिकारक कीटों से बचाने के लिए स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (0.5 ग्राम प्रति लीटर जल में), मेंकोजेब 75 घुलनशील चूर्ण (2 ग्राम प्रति लीटर जल में) में टीपोल या ट्वीन 20 (0.5 मि.ली. प्रति ली. की दर से) का छिड़काव करें। इसके अतिरिक्त बोर्डो मिश्रण (0.5:) तथा ब्रोनोपोल (0.5 ग्राम प्रति लीटर जल में) केरटान 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण (2 ग्राम प्रति लीटर जल में) का पाँच से सात दिनों के अंतराल पर छिड़काव भी लाभकारी होता है। मृदा की स्थिति, प्रकार, पौधे की आयु एवं अवस्था तथा मौसम की स्थिति के अनुसार सिंचाई करें।

बेर

इस ऋतु में फलों का विकास तेजी से होता है। अतः फलों के समुचित विकास के लिए, बागों में सिंचाई की पूरी व्यवस्था होनी चाहिए। तीन से चार हफ्तों के अंतराल पर, मौसम के अनुसार, सिंचाई करें। नवम्बर और दिसम्बर में बेर में फल-मक्खी का प्रकोप ज्यादा होता है। यह विकसित हो रहे फलों में अण्डे देती हैं। अतः प्रभावित फलों को इकट्ठा कर नष्ट कर देना चाहिए तथा फल-मक्खी की रोकथाम के लिए क्रमशः मोनोक्रोटोफॉस और डाइमेथोएट के घोल का 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें। इसके

अनार

बेर

अतिरिक्त 6-10 फेरोमोन ट्रैप प्रति एकड़ की दर प्रयुक्त किए जा सकते हैं।, जिन्हें 3-4 फुट की ऊंचाई पर लटकाना चाहिए। तीस ल्यूर बनाने के लिए एथिल अल्कोहॉल 60 मिली+ मेथिल यूजीनॉल 40 मिली+मेलाथियान/ डीडीवीपी 20 मिली (6:4:2 के अनुपात में) की आवश्यकता पड़ती है। इन ल्यूर को 30-40 दिन बाद बदल देना चाहिए। तनाछेदक कीट का प्रकोप होने की अवस्था में रूई को मोनोक्रोटोफॉस अथवा पेट्रोल से भिगोकर कीटों द्वारा तने में बनाए गए छिद्रों को भर दें तथा इसके पश्चात इसे मिट्टी से बंद कर दें ताकि कीट उसी में मर जाएं। इस द्विमाही के दौरान बेर में चूर्णिल आसिता का भी प्रकोप होने की आशंका रहती है। सल्फर (0.25 प्रतिशत) अथवा केराथेन (0.05 प्रतिशत) या टेबुकोनाजोल के छिड़काव से इसकी रोकथाम की जा सकती है। बेर में फलों का झड़ना भी एक प्रमुख समस्या है, जिसकी रोकथाम के लिए 2, 4 डी (10-15 पी.पी.एम.) अथवा एनएए (20-30 पी.पी.एम.) का छिड़काव लाभदायक है। इन रसायनों के छिड़काव से फलों के झड़ने में अभूतपूर्व कमी होती है। प्रथम छिड़काव सितम्बर या अक्टूबर में हो जाना चाहिए जब वृक्ष पर फूल पूरी तरह से आ जाएं तथा दूसरा छिड़काव प्रथम छिड़काव के एक माह पश्चात करें। उत्पादन तथा फलों के आकार में अभिवृद्धि के लिए मध्य नवम्बर में 1.5 प्रतिशत की दर से पोटेशियम नाइट्रेट का छिड़काव करें।

चीकू

इस द्विमाही में चीकू में दीमक से बचने के लिए क्लोरोपाईरीफॉस (2 मि.ली. प्रति ली. जल में) का छिड़काव करें। जमीन के नीचे तथा मुख्य शाखा के निचले हिस्से से निकलने वाले अंकुरों को निकाल दें। मूलवृंत से निकलने वाली शाखाओं को निकाल दें। मृदा की स्थिति, प्रकार, पौधे की आयु एवं अवस्था तथा मौसम की स्थिति के अनुसार सिंचाई करें। बाग से घास-पात को निकालते रहें तथा बाग में सफाई का ध्यान रखें ताकि कीटों से होने वाली हानि से बचा जा सके।

अनन्नास

नवंबर-दिसंबर में फसल निर्धारण के लिए पौधों की पत्तियों में 25 पीपीएम नेफ्थेलिन एसिटिक अम्ल का घोल रात के समय डालें। जो फल तैयार हों उनकी समय पर तुड़ाई कर बाजार भेजने की व्यावस्था करें। अनन्नास में रोग या कीट से ग्रस्त भागों और पौधों को इकट्ठा करके नष्ट कर देना चाहिए। घास-पात को हटाएं एवं बागों में पलवार का प्रबंध करें जिससे मृदा में पर्याप्त नमी बनी रहे एवं खरपतवार भी नियंत्रित रहें। अक्टूबर में अनन्नास फसल के अवशेषों को निकाल कर नष्ट कर देना चाहिए। मृदा की स्थिति, प्रकार, पौधे की आयु एवं अवस्था तथा मौसम की स्थिति के अनुसार सिंचाई करें। पौधे की आयु के अनुसार फॉस्फोरस और पोटाश दें। कीट एवं रोगों से बचने के लिए 2 प्रतिशत नीम के तेल का व छिड़काव करें। जिन फसलों में कीट तथा रोग कम लगते हैं, उन्हें बाग के सीमा के पास लगाएं।

कटहल

इस द्विमाही पेड़ की पतली शाखाओं पर नर पुष्प निकलते हैं, जो कालांतर में झड़ जाते हैं। ग्राफ्टिंग द्वारा प्रवर्धन के लिए नवम्बर माह उपयुक्त होता है। चूर्णिल रोग का प्रकोप होने पर डाइथेन एम-45 (2 ग्राम/लीटर पानी में) का छिड़काव करें तथा मिलीबग कीट की रोकथाम के लिए वृक्षों पर आम की भंति पॉलीथीन लगाएं।

कटहल

लोकाट

नवंबर माह में भी लोकाट में फूल आते हैं, अत: इस दौरान बागों में सिंचाई नहीं की जानी चाहिए। दिसंबर में फल लगने शुरू होने के बाद 15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई की जानी चाहिए ताकि फलों का समुचित विकास हो सके। पुष्पन के दौरान किसी कीटनाशी का प्रयोग ना करें, नहीं तो परागणकर्ता प्रभावित होंगे जो बाद में परागण की क्रिया को प्रभावित करेंगे और अंतत: फलन भी कम होगा। लोकाट की किस्मों गोल्डन यलो और पेल यलो के लिए बगीचे में कैलिफोर्निया एडवांस किस्म को परागण के रूप में लगाना चाहिए क्योंकि उपरोक्त किस्मों में स्वपरागण क्षमता नहीं होती है। नवंबर माह में ही पॉलिथीन की चादरों से पलवार लगानी चाहिए, ताकि भूमि की नमी को संरक्षित किया जा सके।

आँवला

विभिन्न क्षेत्रों में, आँवला के फलों की तुड़ाई नवंबर-फरवरी माह के बीच होती है। इसलिए जिन क्षेत्रों में इसकी तुड़ाई का कार्य नवंबर-दिसंबर माह में हो, उन क्षेत्रों में इस दौरान फलों से लदे वृक्षों को बांस-बल्ली की सहायता से सहारा देने की व्यवस्था की जानी चाहिए ताकि शाखाओं को टूटने से रोका जा सके। चूंकि, इस दौरान फलों का भी विकास होता है, अत: सिंचाई की भी समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। परंतु ध्यान रहे कि तुड़ाई से 15 दिनों पूर्व सिंचाई रोक दी जाए ताकि फल समय से तैयार हो सकें। दीमक से बचाव हेतु क्लोरपायरीफॉस (1 मिली प्रति लीटर) का प्रयोग करें। शूट गाल मेकर कीट से ग्रस्त टहनियों को काटकर जला दें एवं पेड़ों पर डाइमेथोएट 2 मिली एवं मैंकोजेब 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। फलों के झड़ने की समस्या होने पर बोरेक्स (0.6 प्रतिशत) का छिड़काव करें। दिसम्बर में फल गलन की समस्या होने पर ब्लाईटॉक्स (3 ग्राम/ली. पानी में) के घोल का छिड़काव करें। तैयार हो चुके फलों को तोड़कर बाजार भेजने की व्यवस्था भी करें।

खजूर

इस द्विमाही खजूर के बागों में कोई विशेष कार्य नहीं किया जाता है। यद्यपि, 15 दिनों के अंतराल पर वृक्षों की सिंचाई की जानी चाहिए। खजूर में इस दौरान कोई व्याधि नहीं होती है, फिर भी यदि किसी व्याधि अथवा कीट का प्रकोप हो तो उसकी निगरानी रखी जानी चाहिए ताकि समय पर उचित प्रबंधन किया जा सके।

सेब

नवम्बर में उद्यान की सफाई कर निराई-गुराई कर देनी चाहिए। दिसम्बर में नए बाग लगाने के लिए गड्ढों को प्रथम सप्ताह तक भर देना चाहिए। निचले पहाड़ी इलाकों में जहां ठण्ड ज्यादा नहीं रहती है जाड़ों में इसकी रोपाई इस माह के अंत तक कर सकते हैं। अच्छी फसल के लिए उद्यान में 2-3 किस्मों का होना आवश्यक है। अधिक ठण्ड वाले क्षेत्रों में इसी माह पौधों की काट-छांट का कार्य भी करें। तदोपरांत कटे हुए भाग का चौबटिया लेप से लेपन करें। चौबटिया लेप कॉपर-कार्बोनेट, रेड लेड और अलसी के तेल को 4:4:6 के अनुपात में मिलाकर तैयार कर सकते हैं। तना सड़न रोग की रोकथाम के लिए डायथेन एम-45 अथवा बेविस्टिन के घोल का तने के चारों ओर छिड़काव करें। सेंजोस स्केल कीट की रोकथाम के लिए हिन्दुस्तान पेट्रोलियम, स्प्रे ऑयल अथवा एग्रो स्प्रे ऑयल का छिड़काव दिसम्बर में अवश्य करें।

सेब

अंगूर

नवम्बर में अंगूर के बाग की सफाई कर इसे खरपतवार मुक्त रखें। हल्की सिंचाई के बाद निराई-गुड़ाई अवश्य करें। दिसम्बर नए उद्यान लगाने के लिए अच्छा होता है। इस माह के अंतिम सप्ताह में एक वर्ष पुरानी जड़ सहित लताओं को गड्ढों के बीच में लगाकर सिंचाई करनी चाहिए। रोपाई के बाद नीचे से 15 सें.मी. की ऊंचाई से पौधों को छांटना चाहिए। दिसम्बर में अंगूर की लताएं सुसुप्तावस्था में आ जाती हैं। इस अवस्था में लताओं से पत्तियां पीली होकर झड़ जाती हैं। इसी अवस्था में अंगूर की कटाई-छंटाई (प्रूनिंग) का कार्य किया जा सकता है।

अंगूर

स्ट्रॉबेरी

खेत तैयार करने से पहले 40-50 टन प्रति हैक्टर की दर से गोबर की गली-सड़ी खाद डाल लें। इसके बाद खेत की जुताई करें। बाग लगाने हेतु 10 x 3 x 0.5 फुट आकार की क्यारियां तैयार कर लें। अक्टूबर के अंत या नवम्बर के शुरू में उद्यान में स्ट्रॉबेरी के पौधों की रोपाई करें। नवम्बर में रोपित पौधों

स्ट्रॉबेरी

नीबूवर्गीय

नवम्बर-दिसम्बर में बहुत से नीबू वर्गीय फलों के फल तुड़ाई हेतु तैयार होना शुरू हो जाते हैं। इसी समय फलों का तुड़ाई-पूर्व गिरना एक गंभीर समस्या है। फलों के गिरने से रोकने हेतु 10 पी.पी.एम. 2,4-डी (1 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी) का छिड़काव अवश्य करें। दिसम्बर में नीबूवर्गीय फलों में गोंदार्ति की आशंका बढ़ जाती है। इसकी रोकथाम के लिए प्रभावित हिस्से वाली छाल को खुरचकर निकाल दें। तदोपरांत बोर्डो लेप (1:2:20) का प्रयोग खुरचे भाग एवं इसके चारों ओर के स्वस्थ भाग पर करना चाहिए। दिसम्बर में तैयार फलों को तोड़कर बाजार भेजने की व्यवस्था करें।

से फुटाव शुरू हो जाएगा। फुटाव शुरू होने पर बाग की निराई-गुराई करके खरपतवार आदि निकाल देने चाहिए। पौधों में जब 4-5 पत्तियां आ जाएं तो नाइट्रोजन की प्रथम मात्रा का प्रयोग करना चाहिए। दिसम्बर में पत्तियों का धब्बा रोग दिखने पर डाइथेन एम-45 (2 ग्राम/लीटर पानी में) या बाविस्टिन (1 ग्राम/लीटर पानी में) के घोल का छिड़काव करें। यदि संभव हो तो क्यारियों पर पॉलीथीन का टैंट लगा दें ताकि पौधों की अच्छी बढ़त हो। दिसम्बर में नाइट्रोजन व पोटाश की शेष मात्रा अवश्य दें। पौधों में नियमित अंतराल पर सिंचाई करते रहें। पौधों में पलवार (मल्चिंग) की भी उचित व्यवस्था करें। मल्चिंग के लिए सुविधानुसार पुआल, पौधों की पत्तियों, पॉलीथीन आदि का प्रयोग करें।

इस द्विमाही में किए जाने वाले कृषि कार्यों की चर्चा यहीं समाप्त करते हैं। परंतु, बागों में नियमित रूप से होने वाले कार्य निरंतर चलते रहेंगे। फलन की दृष्टि से अगली द्विमाही (जनवरी-फरवरी) अत्यंत महत्वपूर्ण है। तो प्रिय पाठकों ऋतुराज वसंत का स्वागत अपने बाग-बगीचों में करने के लिए आपकी अपनी पत्रिका *'फल-फूल'* से इसी प्रकार स्नेहपूर्वक जुड़े रहें। ■

पेड़-पौधों में मौजूद हैं गुर्दे बचाने के औषधीय गुण

मधुमेह रोग में सबसे अधिक किडनी पर प्रभाव पड़ता है। वर्ष 2019 में देश में इस रोग से 7.7 करोड़ रोगी ग्रस्त थे और यह अनुमान लगाया जा रहा है कि वर्ष 2045 तक इस रोग से 13.4 करोड़ पीड़ित हो जायेंगे। इस रोग से 10 फीसदी लोगों की मृत्यु तो किडनी फेल होने के कारण हो जाती है। एक अध्ययन द्वारा यह पता लगाया गया है कि अपने देश में लगभग 400 से अधिक ऐसे पौधे पाए जाते हैं जिनसे मधुमेह के इलाज की दवाइयां बनाई जा सकती हैं। इनमें से कुछ पौधे ऐसे भी हैं जो विशेषरूप से किडनी के इलाज के लिए भी कारगर हैं। मधुमेह रोग में किडनी खराब होने का खतरा ज्यादा होता है।

नीम, कुरकुमालौंग, लहसुन, अदरक, अंगूर, मेथी, करेला, अनार, शतावरी मुंगना, उलटकंबल तथा श्योनाक प्रमुख ऐसे पौधे हैं, जिनमें हाईपोग्लेसमिक गुण मिलते हैं। इनके सेवन से रक्त में शर्करा का स्तर कम होता है जो कि मधुमेह रोगियों के लिए फायदेमंद है।अतः यह कहा जा सकता है कि इन पौधों में मधुमेहरोधी गुण विद्यमान होते हैं। इस प्रकार इन औषधीय पौधों से बनी दवाओं से किडनी के रोगों का इलाज संभव है। इसका दावा करंट साइंस जर्नल में प्रकशित एक अध्ययन द्वारा किया गया है। इस जर्नल में ऐसे कई पौधों के विषय में चर्चा की गयी है और इनका चूहों पर परीक्षण भी किया जा चुका है ।

चूहों में परीक्षण के दौरान यह देखा गया है कि इन पौधों में एंटीऑक्सीडेंट गुण विद्यमान हैं, जो किडनी में ऑक्सीडेटिव तनाव को नियंत्रित करते हैं।शरीर में जब एंटी ऑक्सीडेंट और फ्री रेडिकल तत्वों का तालमेल बिगड़ जाता है तो इससे किडनी की कोशिकाओं की हानिकारक तत्वों से लड़ने की क्षमता घट जाती है, जिससे वे कमजोर होने लगती हैं। लेकिन इन औषधीय पौधे के सेवन से इस तालमेल का संतुलन बना रहता है।

तथ्य

- मधुमेह रोगियों में किडनी फेल होने की आशंका 30 से 40 फीसदी तक होती है।
- गुर्दे फेल होने के कारण 10 फीसदी तक के मामले मृत्यु का कारण होते हैं।
- 65 फीसदी आबादी प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के लिए इन औषधीय पौधों पर निर्भर है।

ऐसा माना गया है कि प्रकृति में ही सभी रोगों का इलाज निहित है, आवश्यकता केवल इस बात की है इन पौधों पर गहन परीक्षण किए जाएं और आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के मानकों का प्रयोग करके दवाएं बनायी जाएं जो इन औषधीय पौधों से ही तैयार की जाएं। ■

ISSN 0971-2984 पंजी. सं. (क्यू)-437

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की लोकप्रिय मासिक हिंदी पत्रिका

खेती

- निरंतर 73 वर्षों से प्रकाशित आपकी अपनी लोकप्रिय हिंदी मासिक पत्रिका **खेती** में खेती-बाड़ी के आधुनिक तौर-तरीकों, पशुपालन की उन्नत विधियों, कृषि वानिकी, औषधीय पौधों की खेती तथा प्रगतिशील किसानों की सफलता गाथाओं से जुड़े अनुभवी कृषि वैज्ञानिकों के लेखों को अत्यंत सरल भाषा में प्रस्तुत किया जाता है। इस जानकारी का लाभ किसान भाई अपनी कृषि आय बढ़ाने के लिए उठा सकते हैं।
- संपूर्ण रंगीन पृष्ठों से सुसज्जित इस प्रतिष्ठित पत्रिका में **'अगले माह के कृषि कार्यकलाप'** तथा 'कृषि खबरें, देश विदेश की' जैसे अत्यंत उपयोगी नियमित स्तंभ भी हैं जो रोचक होने के साथ नई जानकारियां भी प्रदान करते हैं। यही नहीं विभिन्न किसानोपयोगी विषयों पर पत्रिका के विशेषांकों का भी समय-समय पर प्रकाशन किया जाता है।

पत्रिका मूल्यः

एक प्रति : 30 रुपये, वार्षिक सदस्यता शुल्क : 300 रुपये

संपर्क सूत्रः

प्रभारी, व्यवसाय एकक
कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन-1, पूसा गेट, नई दिल्ली-110012
दूरभाष : 011-25843657, ईमेल : bmicar@icar.org.in

डा. एस. के. मल्होत्रा, परियोजना निदेशक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के लिए प्रकाशित तथा मैसर्स विबा प्रेस प्रा. लि., सी-66/3, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेस-II, नई दिल्ली 110 020 से मुद्रित। सम्पादकः अशोक सिंह